अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-39, अंक-07, 16-30 नवंबर, 2015

"पंचायत हमारा बड़ा पुराना और सुंदर शब्द है, उसके साथ प्राचीनता की मिठास जुड़ी हुई है। उसका शाब्दिक अर्थ है गांव के लोगों द्वारा चुने हुए पांच आदमियों की सभा। यह उस पद्धति का सूचक है, जिसके द्वारा भारत के बेशुमार ग्राम-लोकराज्यों का शासन चलता था। लेकिन ब्रिटिश सरकार ने महसूल वसूल करने के अपने कठोर तरीके से इन प्राचीन लोक-राज्यों का लगभग नाश ही कर डाला।"

–महात्मा गांधी

(यंग इंडिया, 28-5-'31)

सर्व सेवा संघ
अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

सत्य-अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 39, अंक : 07, 16-30 नवंबर, 2015

संपादक

बिमल कुमार

मो. : 9235772595

संपादक मंडल

डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय

सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र

राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)

फोन : 0542-2440-385/223

ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : ssprakashan.com

शुल्क

मूल्य : पांच रुपये
वार्षिक : 100 रुपये
आजीवन : 1000 रुपये
खाता संख्या : 38350201000431O
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India

विज्ञापन दर

पूरा पृष्ठ : 2000 रुपये
आधा पृष्ठ : 1000 रुपये
चौथाई पृष्ठ : 500 रुपये

इस अंक में...

1.	संपादकीय : हिंसा, केन्द्रीकरण एवं...	2
2.	विज्ञान का धर्म...	3
3.	गुण-विकास और समाज-रचना...	6
4.	सत्य-साधना : मनुष्य होने के लिए...	8
5.	अनाग्रही होने के लिए कृत-संकल्पित...	9
6.	इस युग की आवश्यकता है विश्व...	11
7.	वंशवाद की जय हो...	13
8.	इस तपन के बीच आओ...	15
9.	क्रांति और युद्ध...	16
10.	46वें अ.भा. सर्वोदय समाज...	17
11.	गतिविधियां एवं समाचार...	18
12.	भारत स्वतंत्र होगा तो यहां...	20

संपादकीय

हिंसा, केन्द्रीकरण एवं पूंजीवाद

जिसे सामान्य भाषा में सभ्यता कहते हैं, उस सभ्यता का विकास, हिंसा की संस्थाओं के विकास के साथ जुड़ा हुआ है। व्यक्ति की हिंसा को नियंत्रित करने के लिए समुदाय की हिंसा, तथा समुदायों/समूहों की हिंसा को नियंत्रित करने के लिए राजसत्ता की हिंसा। छोटे राजसत्ता की हिंसा—अर्थात साम्राज्यवाद। इस प्रकार हर बड़ी हिंसा का औचित्य, छोटी हिंसा को नियंत्रित करने के लिए स्थापित किया जाता रहा है। हिंसा का औचित्य इसी में है कि वह, और बड़ी तथा फिर उससे भी बड़ी हिंसा की आवश्यकता को रेखांकित करती जाये।

इसी कारण हिंसा जैसे-जैसे बड़ी होती जायेगी, वैसे-वैसे हिंसा की व्यवस्था विस्तारित एवं केन्द्रीकृत होती जायेगी। अर्थात एक समय के बाद प्रत्यक्ष हिंसा से अधिक व्यापक एवं सूक्ष्म रूप में, व्यवस्था की हिंसा बढ़ती जायेगी। व्यवस्था हिंसा के घातक से घातक अस्त्र-शस्त्रों को बनाती जायेगी तथा उन्हें औचित्यपूर्ण सिद्ध करती जायेगी। इस रूप में हिंसा एक निरन्तर विस्तारित होने वाली केन्द्रीकरण को बढ़ाने वाली शक्ति है।

राजसत्ताओं का साम्राज्यवाद में परिवर्तित होते जाना, हिंसा के इसी विस्तारित एवं केन्द्रीकृत होते जाने की प्रक्रिया का प्रकट रूप है।

व्यवस्था की हिंसा के विस्तारित एवं केन्द्रीकृत होते जाने की प्रक्रिया का एक अन्य रूप दुनियाभर में पिछले 500 वर्षों के दौरान उभर कर आया है। इसे हम आर्थिक साम्राज्यवाद के रूप में चिन्हित कर सकते हैं। प्रारम्भ में आर्थिक साम्राज्यवाद उपनिवेशवाद के रूप में प्रकट हुआ। किन्तु बाद में इसके वाहक बहुराष्ट्रीय संस्थाएं एवं बहुराष्ट्रीय निगम होते चले गये। गांधीजी ने इन परिवर्तनों को अच्छी तरह समझ लिया था। इसी कारण गांधीजी ने हिंसा की व्यवस्थाओं के सभी रूपों तथा व्यवस्थाओं की हिंसा के सभी रूपों का निषेध किया। गांधीजी की अहिंसा को इसी संदर्भ में समझना चाहिए। गांधीजी का मुख्य योगदान यही था कि व्यक्ति की हिंसा, हिंसा की व्यवस्थाओं के विकास का तथा व्यवस्था की हिंसा का विरोध हो, तथा साथ ही व्यक्ति की अहिंसा, अहिंसा की व्यवस्थाओं का विकास तथा अहिंसा आधारित जीवन-संबंधों का विकास आदि वैकल्पिक रचना का कार्य बुनियादी लोकस्तर से शुरू हो, तभी नये युग का निर्माण प्रारम्भ होगा।

केन्द्रीकृत राजव्यवस्थाओं एवं केन्द्रीकृत पूंजीवादी व्यवस्थाओं ने भौतिक संसाधनों की वृद्धि को अपना लक्ष्य बनाया। जबकि गांधीजी ने स्वराज को अपना लक्ष्य बनाया। भौतिक संसाधनों की वृद्धि का रास्ता भी हिंसा के विस्तारित एवं केन्द्रीकृत होते जाने की प्रक्रिया का एक अंग हो गया था। दूसरी ओर स्वराज का आधार अहिंसक नैतिक लोकशक्ति थी तथा इसका अधिष्ठान ग्राम समाज व गांव की पंचायत ही हो सकते थे।

स्वराज का 'स्व' अहंकार से मुक्त तथा सर्व के साथ एकाकार के भाव से युक्त होगा। इसी कारण व्यक्ति का स्वराज, गांव का स्वराज, समाज का स्वराज, राष्ट्र का स्वराज और यहां तक कि विश्व का स्वराज ये सभी एक दूसर को बल प्रदान करने वाले होंगे तथा अहंकार एवं आक्रामकता से मुक्त होंगे। गांधीजी का स्वराज अहिंसा द्वारा ही सम्भव है। यह उस राजनीति से मुक्त होगा, जिसे सदैव किसी शत्रु की जरूरत होगी।

ग्राम स्वराज का काम करने वालों को ग्राम स्तर पर किसी ऐसी व्यवस्था के निर्माण की जरूरत नहीं है, जो राजसत्ता का लघु रूप हो, बल्कि वहां अहिंसा की शक्ति का निर्माण करना होगा। तभी सच्चे ग्राम-स्वराज की ओर हम बढ़ सकेंगे।

बिमल कुमार

विज्ञान का धर्म

❑ न्या. चन्द्रशेखर धर्माधिकारी

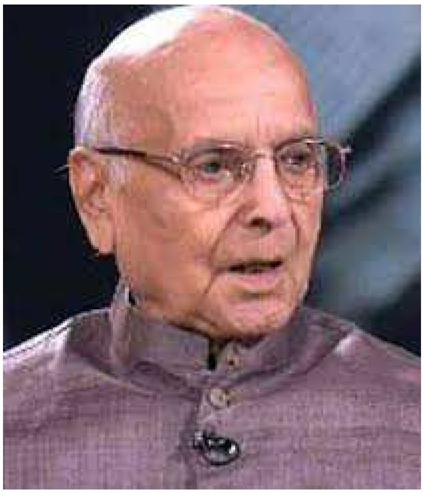

इस समय हमारे देश को प्रसंगानुवर्ती और समयानुवर्ती लोगों की आवश्यकता नहीं है। समय के गर्भ में छिपी हुई आकांक्षा एवं आवश्यकता पहचानकर देश की परिस्थिति को उचित दिशा में मोड़ने की नम्र इच्छा रखने वाली वस्तुनिष्ठ, सहयज्ञ तथा ध्येयपरायण युवाशक्ति की आवश्यकता है। मुझे ऐसा लगता है कि हमारा नैतिक जीवन सदोष तत्त्वज्ञान से कलुषित है। हमारे यहाँ के नीतिनिपुणों ने दो पृथक् सत्ताओं को मान्य किया है। एक व्यावहारिक और दूसरी पारमार्थिक। दोनों सत्ताओं के नियम और व्यवहार पृथक्-पृथक् हैं, फलस्वरूप समाज में दोहरा नैतिक जीवन प्रवर्तित हुआ है। हमारा व्यक्तित्व दोहरा बन गया है। उसमें एक तरह का असामंजस्य और अंतर्विरोध पैदा हुआ है। राजनीति, समाज-नीति और सदाचार-नीति आदि सभी क्षेत्रों में इस दोहरी नीतिमत्ता का प्रभाव प्रचलित हुआ है। विचार और आचार में यदि विरोध होगा तो व्यक्तित्व खंडित हो जायेगा। एक ही विग्रह (शरीर) में द्विविध या बहुविध व्यक्तित्व रहने लगेगा। विचारों में केवल दो ही नहीं, अपितु अनंत सत्ताएँ पैदा होंगी और मनुष्य इसी शरीर में तथा इसी जन्म में अनंत लोगों में निवास करने लगेगा। इसमें से दोहरा जीवन, यांत्रिक जीवन निष्पन्न होगा। आज इस पर विचार करने का समय आ गया है।

यूरोप-अमेरिका के लोगों को विज्ञान के आविष्कारों और चमत्कारों की आदत हो गयी है। अब उन्हें आध्यात्मिक क्षेत्र के चमत्कारों की आकांक्षा है। विज्ञान से जो प्राप्त होता है, वह उन्हें या तो प्राप्त है या प्राप्य है। अब योग-सिद्धि की उन्हें अभिलाषा है। भारत में लोग भूखे हैं; उन्हें भौतिक सुख की अभिलाषा है। इस तरह के वैभवाकांक्षी लोगों के चित्त पर वेदांत का प्रभाव होना सम्भव नहीं है। अभाव का नाम त्याग नहीं है। योग से प्राप्त होने वाली सिद्धि यूरोप-अमेरिका को लुब्ध कर सकती है। ब्रह्मज्ञानी या मुक्त पुरुष का प्रत्यक्ष सामाजिक उपयोग सहज ध्यान में नहीं आता। यूरोप-अमेरिका में इस आकांक्षा का यह अर्थ है कि आज संसार को योगेश्वर उत्तम पुरुष की प्रतीक्षा है। उन्हें ईसा की प्रतीक्षा है, परन्तु वह ईसा ऐसा हो, जो रोटी के चौथाई टुकड़े से हजारों लोगों की भूख मिटा सके। गीतोपदेशक पुरुषोत्तम भी चाहिए, परन्तु वह विश्वरूप का चमत्कार दिखा सके तभी। विज्ञान ने 'मैजिक' का पराभव किया, 'लॉजिक' की प्रतिष्ठा कम की, वस्तुवाद की महिमा प्रस्थापित की, यंत्रों को वाचाल किया। यांत्रिक वाहनों को 'लंघयते गिरिम्' किया। परन्तु मनुष्य अपने मन पर काबू नहीं पा सका। अतएव आज विज्ञानवादी तथा बुद्धिवादी पाश्चात्य जगत योग के पीछे पागल हो रहा है।

लेकिन धर्म तो एक ही है और वह सार्वदेशिक, सार्वत्रिक तथा सार्वजनिक है। धर्म का उद्देश्य है धारण करना—मनुष्य को एक-दूसरे के साथ सम्बन्धित कर उनका एकत्र धारण करना। जो मनुष्यों को जोड़ता है, वही सही अर्थ में धर्म है। जो तोड़ता या विभक्त करता है, वह 'अधर्म' है। मनुष्य को एक-दूसरे के नजदीक लाकर, एक ईश्वर की संतान के नाते उन्हें अमन-चैन से रहना सिखाने वाला जो धारणा का तत्त्व है, उसीका नाम धर्म है। जो भगवान उपासक को जुगुप्सा, अलगाव, मानवद्रोह सिखाता है, वह भगवान नहीं, शैतान है। जो धर्म अपने अनुयायियों को अन्य धर्मियों से दूर रहने को कहता है, वह धर्म नहीं, 'कलि' है। यह बात धार्मिक लोगों के ध्यान में अभी तक नहीं आयी, तो इसे धर्म का दुर्भाग्य मानना होगा। ऐसा धर्म, भविष्य में उसके अनुयायियों की लाख कोशिशों के बावजूद दुनिया में टिकने वाला नहीं है। सांस्कृतिक समन्वय की और धर्म समन्वय की दिशा में जिन धर्मों का विकास होगा, वे ही धर्म दुनिया में टिकेंगे और धीरे-धीरे मानवधर्म के पवित्र महासागर में विलीन होकर कृतार्थ होंगे।

अब हम इस मुकाम पर पहुँचे हैं कि विज्ञान के युग में मनुष्य के दिमाग पर किसी प्रकार की सत्ता नहीं चलेगी। धर्म, सम्प्रदाय, गुरु संस्था—किसी की सत्ता नहीं चलेगी। इतना ही नहीं, भगवान की भी सत्ता मनुष्य के दिमाग पर नहीं चलेगी। इसलिए नहीं चलेगी कि हमारे भले-बुरे कामों की जिम्मेवारी भगवान लेने के लिए तैयार नहीं है। मुझे चोट लग जाती है; मैं अगर कहूँ कि भगवान की कृपा से चोट लगी, तो ईश्वरपरायण लोग कहेंगे कि 'इसके लिए भगवान जिम्मेदार नहीं है, तुम्हारा कर्म ही जिम्मेवार है।' 'मेरा कर्म कहाँ से आया?' इसका जवाब किसी धर्म के पास नहीं है। मनुष्य अपने कर्म के लिए जिम्मेवार है, यह उसकी मनुष्यता है, यही उसकी स्वतंत्रता है। भगवान भी मनुष्य को उसके कर्म के लिए जिम्मेवार मानता है।

जब हम धर्म का विचार करते हैं, तब दो बातें ध्यान में आती हैं। एक तो यह कि धर्म के तीन अंग हैं। एक अंग है अध्यात्म, जो मुक्ति से सम्बन्ध रखता है। मुक्ति का अर्थ है सुख-दुःख से मुक्ति, शारीरिकता से मुक्ति,

विकार और वासनाओं से मुक्ति। 'अध्यात्म' में दो शब्द हैं, अधि-आत्मा। आत्मा के विषय में जो है, वह। धर्म का दूसरा अंग ईश्वरविषयक है। ईश्वर और मनुष्य का एक-दूसरे के साथ क्या सम्बन्ध हो, इस विषय का विवेचन इस अंग में है। तीसरा अंग वह है, जिसका सम्बन्ध परलोक से है—मरणोत्तर जीवन से। अध्यात्म का सम्बन्ध मरणोत्तर जीवन से नहीं है। अध्यात्म तो कालनिरपेक्ष है। ईश्वरविषयक जो अंग है, उसका भी सम्बन्ध परलोक से नहीं है। परलोक से सम्बन्ध जिस अंग का है, उसका नाम है कर्मकाण्ड। इस कर्मकाण्ड का नैतिकता से कोई सम्बन्ध नहीं है।

अध्यात्म सभी धर्मों के लिए समान है। थोड़ा अन्तर दर्शन में हो सकता है, लेकिन मुक्ति के लिए सभी धर्मों की समान उत्कण्ठा है। मुक्ति के स्वरूप के विषय में अलग-अलग कल्पनाएँ हो सकती हैं। ईश्वरपरायणता को भी सब धर्मों ने माना है। ईश्वर के स्वरूप के विषय में मतभेद हो सकते हैं, लेकिन ईश्वर के गुणों के विषय में मतभेद नहीं है। जितनी चीजें सब धर्मों में समान हैं, उतनी आपस में कट जाती हैं, जैसे गणित के कॉमन फैक्टर कैन्सल, यानी रद्द हो जाते हैं। उनको हमने धर्म नहीं माना है। जो सभी धर्मों के शाश्वत मूल्य या सिद्धान्त हैं, उसे 'अध्यात्म' कहते हैं, जो विशिष्ट धर्म से निरपेक्ष है। गीता में एक वचन है, जिसका भावार्थ है, अध्यात्म यानी स्वभाव, यानी 'स्वत्वभावना' या 'अपनापन'। इस विषय में पाश्चात्य लोगों की अपेक्षाएँ पूरी नहीं हुईं, यह स्पष्ट है। पश्चिम के लोग वैभव से उसका यथेष्ट और लगातार आस्वाद लेने के बाद अब ऊब गये हैं। अब उन्हें पारमार्थिक नेतृत्व और आध्यात्मिक प्रकाश की चाह है। परमार्थ का मार्ग आत्मप्रत्यय से दिखाने वाला ब्रह्म-द्रष्टा अब उन्हें चाहिए। उस प्रकार का प्रत्यय और निश्चितता ज्ञान-विज्ञान के पास नहीं है। आजकल वैज्ञानिक भी लगभग अनिर्वचनीय-वादी बन रहे हैं। कहते हैं विज्ञान के लिए मानवता का अधिष्ठान चाहिए। कुछ तो यहाँ तक कहने लगे हैं कि ईश्वर का अधिष्ठान चाहिए। विज्ञान को वेदांत की आकांक्षा हो रही है, और अर्थशास्त्र को परमार्थ के अरमान हो रहे हैं।

अध्यात्म की भी सार्वत्रिक उत्कण्ठा अब अधिक स्पष्ट रूप से प्रकट हो रही है। विज्ञान ने जो असुरक्षित परिस्थितियाँ उपस्थित की हैं, उनसे घबराया और डरा हुआ मनुष्य संरक्षण के लिए अध्यात्म की शरण नहीं खोजता, ऐसी शंका है। वह जो भी हो, किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि अध्यात्म की उत्कण्ठा अब वातावरण में व्याप्त हो रही है, मनुष्य को यह प्रत्यय हो गया है कि विज्ञान से मनोबल नहीं बढ़ता; योगसामर्थ्य से सिद्धि प्राप्त होने पर ऐश्वर्य भी मिलता है और चित्त का सामर्थ्य भी बढ़ता है। अतः मानव योग और चमत्कार की ओर मुड़ रहा है। वस्तु की अपेक्षा ऊर्जा की ओर अब विज्ञान का झुकाव अधिक है। उनका यह निष्कर्ष है कि 'मास' तथा 'एनर्जी' एक-दूसरे में परिणत हो सकते हैं। जड़ की ओर से चैतन्य की ओर झुकाव का एक कारण यह भी हो सकता है। वैज्ञानिक धर्म नाम की नयी संकल्पना का उदय हो रहा है। लेकिन अपेक्षा यह है कि यह 'धर्म' प्रचलित धर्मों का, या सम्प्रदायों का स्वरूप तो नहीं लेगा। विज्ञान ने हमें इस मुकाम पर पहुँचा दिया है कि सभी धर्मों के लोगों के खून के 'ग्रुप' समान ही हैं। धर्म के साथ 'खून' के ग्रुप नहीं बदलते, यही विज्ञान की सबसे बड़ी देन है। लेकिन विज्ञान आज विश्व के भोगवादियों और सत्तानिष्ठों के लिए एजेण्ट या दलाल का काम कर रहा है। यह विज्ञान की भूमिका नहीं है। विज्ञान की भूमिका है—सृष्टि के नियमों का आविष्कार। यह आविष्कार सृष्टि को हमारे जीवन की एक विभूति बनाने के लिए हो। सृष्टि आज हमारे जीवन की विभूति है। संस्कृति एक ओर जाए और विज्ञान दूसरी ओर, यह नहीं होना चाहिए। वैज्ञानिक-सांस्कृतिक दृष्टि से ही इन दोनों प्रवाहों का एकीकरण हो सकता है। अब वह युग आ रहा है जब हमें मानवीय विभूति की ओर जाना होगा। विश्वास, निष्ठा, श्रद्धा आदि शब्दों को हम सही आशय जाने बिना ही इस्तेमाल करते हैं। हम यह भूल जाते हैं कि इनका सम्बन्ध बुद्धि और विवेक से है। जहाँ बुद्धि और विवेक का सम्बन्ध नहीं होता वह 'अंधश्रद्धा' कहलाती है। और विज्ञान का सम्बन्ध निष्ठा, बुद्धि और विवेक से होता है। वह सत्य की खोज की प्रक्रिया है। वही उसका वैज्ञानिक अधिष्ठान है। बर्नार्ड शॉ ने एक वैज्ञानिक से अपने अपने अनूठे ढंग से कहा था कि ''तुमसे तो धर्मगुरु अधिक भरोसेदायक हैं। क्योंकि वह हजारों सालों से वही चीज या सिद्धान्त दुहराता है, और तुम तो वैज्ञानिक प्रयोगों के बाद प्रमेय या सिद्धान्त बदलते रहते हो।'' असल में देखा जाए तो यही विज्ञान का धर्म है। गांधीजी ने तो, 'संवेदन-विहीन या मानवता-विहीन विज्ञान' को सामाजिक पाप कहा था। विज्ञान तटस्थ होता है, मतलब संवेदनाविहीन होता है यह कहना गलत होगा। तटस्थता में संवेदनशीलता का होना आवश्यक है। पत्थर तटस्थ नहीं होता, वह संवेदनशून्य होता है। विज्ञान का मानवनिष्ठ होना स्वधर्म है। वह 'संहारक' नहीं, मनुष्य का 'संरक्षक' बने, इसलिए उसकी भूमिका 'मानवीय' होनी चाहिए। वही विज्ञान के विशिष्ट ज्ञान का प्रयोजन है।

धर्म शब्द की निश्चित व्याख्या करना मुश्किल है,ऐसा सर्वोच्च न्यायालय को भी कहना पड़ा। हमारे संविधान में नागरिक के मूलभूत कर्तव्यों के संदर्भ में कहा गया है कि ''वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करना भारत के प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है।'' मतलब इन तथ्यों में अंतर्विरोध न हो यही इसकी मूल भूमिका है। सत्य की खोज करना यही वैज्ञानिक वृत्ति का अधिष्ठान है। और सत्य तो सर्वदेशीय, सर्वधर्मीय या सही अर्थ में 'धर्मनिरपेक्ष' ही हो सकता है। इसीलिए यह भी मानना होगा कि सत्य की खोज करने के लिए प्रयोग करना विज्ञान का

धर्म है, जो सर्वजनहिताय और सर्वजनसुखाय हो। अन्यथा मार्टिन लूथर किंग के कथनानुसार हमारी चमकती टेक्नोलॉजी में ऐसा कुछ भी नहीं है जो व्यक्ति को नयी ऊँचाइयों पर ले जा सके, क्योंकि भौतिक विकास अपने आप में ही एक लक्ष्य है। नैतिक उद्देश्य के अभाव में मनुष्य स्वयं छोटा हो जाता है—क्योंकि मनुष्य का काम बड़ा हो जाता है।

आज का जो सबसे बड़ा प्रश्न है, सबसे बड़ी व्याधि है, वह है—कॉरपोरेट स्टेट—ऐसा राज्य, जो सारे-के-सारे समाज के शरीर को, समाज के सारे अंग-प्रत्यंगों को व्याप रहा है। यह मनुष्य की तीसरी बाधा है; यांत्रिक मानव, जिसे टेक्नोलॉजिकल मैन कहते हैं। आज के मानव का जो एक संस्करण है, वह है बाजारू संस्करण, जिसमें हर चीज कमोडिटी—सौदा बन जाती है। हर चीज को सौदे का स्वरूप प्राप्त होता है। यांत्रिक मनुष्य आधुनिक विज्ञान की संतान है, लेकिन अब वह इसी कारण परेशान है। यंत्र किसलिए आया था? मनुष्य को स्वतंत्र करने के लिए, मनुष्य को श्रम से बचाने के लिए यंत्र का आविर्भाव हुआ था। अब क्या हुआ? मनुष्य यंत्र को नहीं जोत रहा है, यंत्र मनुष्य को जोत रहा है। सारे के सारे यंत्र की व्यवस्था का मनुष्य एक अंग बन गया है। यह पश्चिम की समस्या है। पश्चिम के जितने सम्पन्न राष्ट्र हैं, उनकी यह समस्या है। भगवान की कृपा से अभी हमारी यह समस्या नहीं हैं, लेकिन हमारी यह आकांक्षा है। हमारे सामने प्रश्न यह है कि आज सम्पन्न राष्ट्रों की जो समस्या है, क्या उस स्थिति तक हम पहुँचना चाहते हैं, क्या उनकी प्रतिलिपि हम बनना चाहते हैं? हम उनकी प्रतिलिपि नहीं बनना चाहते, जीवन के लिए, जीवन-विकास के लिए। मनष्य जीवन-विकास का अर्थ है, जीव का विकास, प्राणी का विकास, प्राणी का पोषण, प्राणी का संवर्धन यानी सम्पूर्ण जीवसृष्टि का विकास। एक नयी समग्रता में इकॉलॉजी शामिल हो गयी है। संतुलन से मतलब है सृष्टि में जितने द्रव्य हैं, सृष्टि में जितनी विभूतियाँ हैं, इनमें एक ऐसा संतुलन है कि जिसमें सभी का जीवन सम्पन्न होता है। इस संतुलन का नाम इकॉलॉजी है।

एक पुरानी किताब दुबारा छाप दी गयी है—'ह्यूमन इकॉलॉजी'। दूसरी एक पुस्तक है, 'डिसिप्लिन ऑव पीस'। अगर शांति चाहिए तो प्रकृति को लेकर एक नये अनुशासन की आवश्यकता होगी। अब तक जीवन में 'फ्रेगमेंटेशन-कम्पार्टमेंटेशन', अर्थात विशेषज्ञों की दुनिया थी। विशेषज्ञों की बड़ी प्रतिष्ठा है। हर चीज के लिए पृथक् विशेषज्ञ। इससे एक-एक अंग का तो विकास हुआ, समग्रता का ह्रास हुआ। अब एक नयी समग्रता, एक नयी सम्पन्नता की आवश्यकता है, अब तक की गलतियों को सुधारने के लिए। समग्रता की अपनी एक गति है। जीवन की भी अपनी एक गति है। इस गति को पहचानने की आवश्यकता है। हम कहते हैं कि जीवन का नियंत्रण चेतन करता है। यंत्र-व्यवस्था से मनुष्य के अवचेतन में अंतर पड़ गया है। मनुष्य की जो आर्थिक व्यवस्था होती है उत्पादन और वितरण की, उस व्यवस्था का मनुष्य की चेतना पर असर होता है। मनुष्य की जीविका का जो संयोजन होता है, उसका परिणाम जीवन पर होता है। इसलिए जीविका और जीवन, शंभु और अंबिका की तरह अभिन्न हो जाते हैं। यह जो जीविका का संयोजन यंत्र-युग में हुआ है, वह विचारणीय विषय है।

मेजर मेक्लुहान की एक पुस्तक बहुत प्रसिद्ध है—'अंडरस्टेंडिंग मीडिया, दि एक्सटेंशन ऑव मैन'। आज के मनुष्यों के एक-दूसरे के साथ व्यवहार के जो साधन हैं, इनसे मनुष्य के शरीर का विस्तार हुआ है। दाँत के विस्तार का, या नाखून के विस्तार का नाम चाकू है। यह तो हम समझ सकते हैं कि हमारी इन्द्रियों और हमारे अवयवों का विस्तार उपकरणों के रूप में हुआ है। पहले मनुष्य परिमित हुआ। परिमित से मतलब अपनी सीमाओं को मनुष्य ने पहले पहचाना। पहचानना तो आसान है! शेर के नाखून और दाँत हैं, हाथी का डील-डौल है, हिरण के तेज कदम हैं, हमारे में ऐसा कुछ नहीं हैं। यह सब मनुष्य पहचानता है। अपनी सीमाओं का उसे अनुभव हुआ। इसके बाद 'मैन एम्पलीफाइड' हुआ, सम्पन्न हुआ। उपकरणों से सम्पन्न हुआ, समृद्ध हुआ। समग्रता की ओर गया, पुष्ट हुआ। इसके बाद उनका विस्तार हुआ, इजाफा हुआ, उसकी इन्द्रियों का इजाफा हुआ, परिवर्द्धन हुआ। इसके बाद हुआ 'मैन इमीटेटिड।' मनुष्य की नकल होने लगी। मनुष्य गणित कर सकता है, हिसाब कर सकता है, तो कम्प्यूटर भी हिसाब करता है। मनुष्य कविताएँ कर सकता है, तो कम्प्यूटर भी कविताएँ करता है। यंत्र मनुष्य की नकल करने लगा। उपकरणों का विकास होता चला गया। परिणाम यह हुआ कि 'मैन ट्रान्सप्लान्टेड' हो गया, वह स्थान-च्युत हो गया। गीत गाना है, रेडियो है; कविता बनानी है, कम्प्यूटर है; पाठ पढ़ाना है, तो टेपरेकार्डर है। अब मनुष्य का क्या रह गया है, उसके पास काम ही नहीं है। वह है केवल लोहार की धौंकनी। इसलिए अंत में 'मैन मॉडिफाइड', परिवर्तित मानव आ गया, यानी तंत्र ने जितना घटा दिया है उसके बाद का मनुष्य। तो यह जो उपकरण और मनुष्य का सम्बन्ध है, वह आज की सांस्कृतिक क्रांति का अन्तिम विचार है। हम क्या चाहते हैं? कहाँ पहुँचना चाहते हैं? बात तो साफ है, मनुष्य को मनुष्य के नजदीक लाना चाहते हैं, शरीर से और हृदय से भी; तो फिर मनुष्य को मनुष्य के निकट लाने के लिए अब क्या करना होगा, यह सवाल है।

टेक्नॉलॉजिकल मैन की समस्या क्यों उठी? क्योंकि उपकरण की सांस्कृतिक भूमिका का सवाल है। क्या उपकरण की कोई सांस्कृतिक भूमिका भी है? सांस्कृतिक विकास से मतलब है—जीव का विकास और जीवन का विकास, मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास; प्रकृति का शोषण नहीं। आज शिकायत यह है कि हम सृष्टि का इतना शोषण कर रहे हैं कि

कुछ दिनों के बाद शायद यह रहेगी भी नहीं। जिजीविषा ही मनुष्य के जीवन की मुख्य प्रेरणा है। इस आकांक्षा के आधार पर अब मनुष्य को चेतावनी दी जा रही है कि सृष्टि के साथ हमारा केवल अनुबंध नहीं, सम्बन्ध भी होना चाहिए। हम उसके हैं और वह हमारी है। इस प्रकार का एक विचार अब दुनिया में सब जगह हो रहा है। प्रयोगशीलता विज्ञान की खासियत है। आखिरी शब्द या सिद्धांत विज्ञान में सम्भव नहीं है। प्रयोग शब्द के आशय को हमें समझ लेना चाहिए : जिसमें असफलता का भय होता है उसका नाम प्रयोग है। वैज्ञानिक प्रयोगशील होता है, वही उसका मुख्य लक्षण है और 'स्वधर्म' भी है।

प्रेम, मैत्री या स्नेह मनुष्य का स्वभाव है। द्रव्यत्व जितना पानी का स्वभाव है, उससे कहीं अधिक, मूलभूत अर्थ में प्रेम मनुष्य का स्वभाव है, मनुष्य प्रेमस्वरूप है। इसमें जितने अंतराय आते हैं, बाधाएँ आती हैं, रुकावटें आती हैं, उनके निवारण का नाम क्रांति है। मनुष्य सबसे बड़ा आदर अगर मनुष्य का कर सकता है, तो मैत्री में ही कर सकता है। इससे बड़ा कोई आदर नहीं है मनुष्य में, और यही मनुष्य की आकांक्षा है। इसलिए सारे धर्मों ने हमको एक ही उपदेश दिया—पड़ोसी को मित्र बनाओ, जो पराया है उसको अपना। समस्या यह है कि विज्ञान एक तरफ जाएगा और जीवन या संस्कृति दूसरी तरफ जाएगी और इन दोनों में कभी मेल नहीं होगा तो मनुष्य यांत्रिक बन जाएगा। इसलिए प्रकृति के प्रति एक नये रुख की आवश्यकता है। इस विज्ञान के युग में प्रकृति, जीवन की एक नयी विभूति है। विभूति से मतलब है : जीवन को सम्पन्न करने वाली, जीवन में सहयोग देने वाली। संसार में जितनी वस्तुएँ हैं, जितने तत्त्व हैं, उन सारे के सारे तत्त्वों से हम सहयोग चाहते हैं। प्रकृति का विरोध नहीं, प्रकृति का शोषण नहीं, प्रकृति के साथ सहयोग, यह एक 'एटीट्यूड' है, एक रुख है। और यही विज्ञान का 'धर्म' या अध्यात्म है। विज्ञान + अध्यात्म, यही आज का नया वैज्ञानिक मंत्र है। ❑

गुण-विकास और समाज-रचना

❑ विनोबा

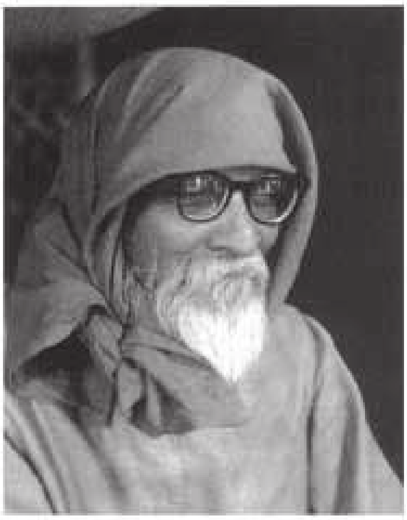

मनुष्य का मन जैसा है, वैसा ही रहेगा। वह किसी तरह पशु का मन नहीं बन सकता और न काल्पनिक देवता के समान ही बन सकता है। वह अपनी मर्यादा में ही रहता है। परिस्थिति सुधरने पर वह थोड़ा-बहुत सुधरता है और बिगड़ने पर थोड़ा-बहुत बिगड़ता है। उसकी चिन्ता न कीजिए। समाज-रचना बदलने के लिए हिंसा करनी पड़े, तो भी सद्गुण मर गया।

गुण-विकास और समाज-रचना, ये दो ऐकांतिक निष्ठाएं आदिकाल से लेकर अब तक चलती आयी हैं। गुण-विकासवादी कहते हैं : 'गुणों की बदौलत ही यह जगत चल रहा है। मनुष्य का जीवन भी इसी तरह गुणप्रेरित है। ज्यों-ज्यों गुणों का विकास होता जाता है, त्यों-त्यों समाज की रचना सहज ही बदलती जाती है। इसलिए सज्जनों को अपना सारा ध्यान गुण-विकास पर केन्द्रित करना चाहिए। समाज-रचना के फेर में पड़ना व्यर्थ ही अहंकार को सिर उठा लेना है। अहिंसा, सत्य, संयम, संतोष, सहयोग आदि यम-नियमों के प्रति निष्ठा दृढ़ करना, ये गुण हमारे नित्य के व्यवहार में उत्तरोत्तर प्रकट हों, ऐसी कोशिश करना ही हमारा काम है। इतना करने पर शेष सब अपने-आप हो जायेगा। बच्चे को दूध पिलाओ, यह माता को कहना नहीं पड़ता। दुःख के समय रोना चाहिए, यह छोटे बालक को सिखाना नहीं पड़ता। वात्सल्य होगा, तो दूध अपने-आप पिलाया जायेगा। दुख होगा, तो सहज ही रोया जायेगा।'

इस प्रकार की यह एक निष्ठा है, जो सभी संतों के ह्रदय में सहज स्फूर्त होती है। गीता में दैवी सम्पत्ति के गुण और ज्ञान के लक्षणों की जो तालिका आयी है, उसके कूल में यही निष्ठा है।

इसके ठीक विपरीत कम्युनिस्टों का तत्त्वज्ञान है। वे कहते हैं : "जिसे आप गुण-विकास कहते हैं, वह यद्यपि चित्त में होता है, पर चित्त द्वारा किया हुआ नहीं होता, परिस्थिति द्वारा किया होता है, चित्त स्वयं ही परिस्थिति के अनुसार बना रहता है। योग्य परिस्थिति निर्माण कर देने पर योग्य गुणों का उदय होगा ही। इसलिए परिस्थिति को पलटिये, जल्द से जल्द पलटिये और चाहे जिस तरह से पलटिये। मनोवृत्तियों के जाल बुनते न बैठिये। मनुष्य का मन जैसा है, वैसा ही रहेगा। वह किसी तरह पशु का मन नहीं बन सकता और न काल्पनिक देवता के समान ही बन सकता है। वह अपनी मर्यादा में ही रहता है। परिस्थिति सुधरने पर वह थोड़ा-बहुत सुधरता है और बिगड़ने पर थोड़ा-बहुत बिगड़ता है। उसकी चिन्ता न कीजिए। समाज-रचना बदलने के लिए हिंसा करनी पड़े, तो भी सद्गुण मर गया।' कहकर चिल्लाते मत रहिए। बुरी रचना नष्ट हुई, इतना ही समझिए। उसके लिए जो हिंसा करनी पड़ी, वह साधारण हिंसा नहीं थी। वह ऊंची सतह की हिंसा थी।

वह भी एक सद्‌गुण ही थी। यह समझेंगे तो आपका भलीभांति गुण-विकास होगा।''

ये दो छोर हुए। इन दोनों के बीच बाकी सबको बैठना है। हरएक अपनी-अपनी सुभीते की जगह देखकर बैठता है।

कोई कहते हैं : 'समाज-रचना बदलने का भी महत्त्व है, इस बात से इनकार नहीं। लेकिन वह विशिष्ट गुणों के विकास के साथ ही होना चाहिए। समाज में कुछ 'स्थिर मूल्य' होते हैं। उन्हें गंवा कर एक खास तरह की समाज-रचना चाहे जिस तरह सिद्ध करने की जल्दी में ब्याज के लोभ में मूल रकम भी गंवाने जैसी बात होगी। समाज-रचना कोई शाश्वत वस्तु नहीं। देशकाल के अनुसार बदलनी ही चाहिए। सदा के लिए समाज-रचना बना डालें और बाद में सुख की नींद लें, यह हो नहीं सकता। समाज-रचना को देवता बनाकर बैठाने में कोई सार नहीं। आखिर समाज-रचना करेगा भी कौन? मनुष्य ही न? तो जैसा मनुष्य होगा, वैसी ही वह बनेगी। इसलिए सौजन्य की मर्यादा पालकर, बल्कि उत्तम सौजन्य रखकर, सौजन्य को बढ़ाकर, सौजन्य के बल से ही समाज-रचना में परिवर्तन करना चाहिए। इस तरह का परिवर्तन धीरे-धीरे हो, तो भी चिन्ता करने का कारण नहीं। धीरे-धीरे चबाकर खाया हुआ हजम भी अच्छा होता है। यह धीमी गति ही अन्त में शीघ्रतम कार्यसाधक सिद्ध होगी। जब हम सौजन्य बढ़ाने की बात कहते हैं, तब हम देवता नहीं बनना चाहते। वह अहंकार हमें नहीं चाहिए। जब हम मनुष्य ही हैं, तो सौजन्य का कितना भी विकास क्यों न करें, हमें देवता बनने का खतरा है ही नहीं। इसलिए हम जितना अधिक से अधिक गुणोत्कर्ष कर सकें, उतना बेधड़क साध लें, यह गलत नहीं कि समाज-रचना अच्छी होने पर सद्‌गुणों की वृद्धि में मदद पहुंचती है। किन्तु सद्‌गुणों की उचित वृद्धि होने पर ही समाज-रचना अच्छी होती है, यह उसकी अपेक्षा अधिक मूलभूत बात है। सद्‌गुण-निष्ठा बुनियाद है और समाज-रचना इमारत। बुनियाद को उखाड़ कर इमारत कैसे मजबूत बनायी जा सकती है?'

इस पर दूसरे कुछ कहते हैं : 'यह हमें भी मंजूर है कि समाज-रचना बदलने का काम शाश्वत मूल्यों को सुरक्षित रखकर ही किया जाय और सद्‌गुण-निष्ठा डिगने न दी जाय। किन्तु नैमत्तिक कर्म के लिए नित्य कर्म छोड़ना पड़ता है, इसे भी नहीं भूलना चाहिए। आप प्रार्थना को नित्यकार्य समझते हैं। लेकिन आपकी प्रार्थना के ही समय यदि कहीं आग लग जाय, तो आप प्रार्थना छोड़कर आग बुझाने जायेंगे या नहीं? आग बुझाने के बाद आराम से प्रार्थना कर लेंगे। इसे नित्य-नैमित्तिक-विवेक कहना चाहिए। इसी तरह का विवेक सर्वत्र करना पड़ता है।'

कम्युनिस्टों की तरह हम यह नहीं मानते कि 'क्रांति के लिए हिंसा के साधनों से काम लेना ही चाहिए, हिंसा के सिवा क्रांति हो ही नहीं सकती। हमारा विश्वास है कि भारत जैसे देश और जनतंत्रात्मक राज्य में हिंसक साधनों का अवलंबन किये बिना केवल बैलट-बाक्स के बल पर राज्य-क्रांति की जा सकेगी। उसके लिए लोकमत तैयार करने में 20-25 साल लग जायं, तो भी कोई हर्ज नहीं। हम धैर्य के साथ लोकमत तैयार करते रहेंगे। लेकिन मान लीजिए कि सत्ताधारी पक्ष ने चुनाव की पवित्रता कायम नहीं रखी और वे सत्ता का दुरुपयोग करके चुनाव लड़ गये, तो ऐसे अवसर पर साधन-शुद्धि का आग्रह रखने का अर्थ निरंतर मार खाते रहना ही होगा। इसलिए निरुपाय होकर केवल विशेष प्रसंग के लिए ही अन्य साधनों का उपयोग करना हमें अनुचित नहीं मालूम होता। हम उसे 'नैमित्तिक धर्म' समझते हैं। चाहे तो आप उसे 'आपद् धर्म' कह लीजिए, लेकिन 'अधर्म' न कहिए, इतना ही हमारा निवेदन है। इतने से ही शाश्वत मूल्य न गिरेंगे। नैमित्तिक कारण के लिए सही रास्ते से थोड़ा अलग जाना पड़े, तो बाद में फिर से सही रास्ता लिया जा सकता है। सत्ता की अदला-बदली होते ही शाश्वत मूल्यों को और भी अधिक पक्का कर लेंगे।

''हिला-हिलाकर खूंटे को मजबूत गाड़ने की नीति प्रसिद्ध है। वैसा ही इसे समझिए। अहिंसा के लाभ के लिए ही हिंसा का यह अल्पकालिक आश्रय है। अन्यथा अहिंसा हमसे बहुत दूर चली जायेगी। पेड़ तेजी के साथ बढ़े, इसीलिए हम उसकी काट-छांट करते हैं न? पेड़ की जड़ पर कुल्हाड़ी चलाना एक बात है और उसकी शाखाओं की काट-छांट करना दूसरी बात। पूंजीवाद, साम्राज्यवाद, जातिवंशवाद—ये सारे वाद अहिंसा की जड़ों पर ही प्रहार किया करते हैं। हिंसा में कम्युनिस्टों की श्रद्धा और उसके अंधाधुंध अमल के कारण उनका प्रहार भी अहिंसा की जड़ पर होता है। यद्यपि उनका उद्देश्य वैसा नहीं होता, तथापि उसका परिणाम वही निकलता है। इसलिए हम साम्यवाद का समर्थन नहीं कर सकते। परंतु विशिष्ट गुण की निष्ठा के नाम पर समूचे समाज की प्रगति रोक रखने और गरीबों का उत्पीड़न दीर्घकाल तक चलने देने में हमें गुणनिष्ठा का अतिरेक मालूम पड़ता है। इसके अलावा, हमारा यह कथन है कि दूसरे राज्य का हमला रोकने और भीतरी विद्रोह खतम करने के लिए यदि शस्त्र-बल का प्रयोग करना पड़े, तो उसकी गणना हिंसा में न कर उसे 'दंड धर्म' समझना चाहिए। इतने अपवाद छोड़कर शेष सारे प्रसंगों में अहिंसक साधनों का आग्रह रखना अत्यन्त जरूरी है, ऐसा हम मानते हैं।''

संतों और कम्युनिस्टों की भूमिकाएं नैष्ठिक भूमिकाएं हैं। और इन दो बिचली भूमिकाओं को हम 'नैतिक भूमिकाएं कह लें। इनमें से पहली नैतिक भूमिका का प्रतिपादन इस देश में गौतम बुद्ध और गांधी ने प्रभावशाली ढंग से किया है। दूसरे भी कुछ धर्मसंस्थापकों ने उसका आश्रय लिया है। थोड़े ही स्मृति-वचनों ने उसे मान्य किया है। दूसरी नैतिक भूमिका का प्रतिपादन अनेक नैतिक स्मृतिकारों ने किया है। ❑

सत्य-साधना : मनुष्य होने के लिए

❑ शुभू पटवा

यह सर्वमान्य मत है कि झूठ का सहारा तात्कालिक तौर पर ही राहतदायी होता है। असलियत अंततः सामने आती ही है। दूसरी ओर सत्यकथन तात्कालिक तौर पर अवश्य कष्टकर रहता है, पर दीर्घकालिक स्तर पर उसके सुफल ही निकलते हैं। जाहिर है कि झूठ व्यवहार किसी भी रूप में युक्तियुक्त नहीं हो सकता।

एक झूठ को बचाने के लिए अनेक बार झूठ का सहारा लेना पड़ता है—यह हमेशा कहा जाता रहा है। ठीक इसी तरह यह भी माना जाता है कि एक झूठ को सौ बार दोहराया जाये, तो वह सच समझ लिया जाता है। यह भी कहा जाता है कि झूठ के पांव कच्चे होते हैं।

झूठ या सच, बोलने वाला जानता है कि वह क्या बोल रहा है। इसीलिए यदि कोई झूठ बोल रहा होता है, तो वह अंदर से घबराया-सा भी रहता ही है। सब जानते हैं कि सच की अपेक्षा झूठ अधिक खतरनाक है। और झूठ जब झूठ नहीं रहता, यानी कि जब उस पर आया परदा हट जाता है और असलियत सामने आ जाती है, तो ऐसा करने वाला कहीं का नहीं रहता। वह अविश्वसनीय तो हो ही जाता है, कई बार कुछ अनहोनी भी हो जाती है। ठीक इसके बरक्स सच बोलने वाला किसी भी प्रतिकूल दशा में कभी अकेला नहीं रहता। सच के पक्ष में स्वतः कोई-न-कोई अवश्य आ खड़ा होता है। माना तो यह तक जाता है कि सच का बल अपार होता है। उसे सहारे की जरूरत नहीं रहती है।

फिर भी नीतिज्ञों का कहना है कि 'कड़वा सच' नहीं बोलना चाहिए। मधुर सत्य बोलो। सच 'कड़वा' या कि 'मधुर' कैसे होता है? सत्य तो सत्य है, पर हम देखते हैं कि कटु सत्य से अकसर बचा जाता है। ठीक इसके विपरीत मधुर सत्य को कई बार 'चापलूसी' की श्रेणी में भी रख दिया जाता है। ये लोक-व्यवहार की बातें हैं और इसी व्यवहार में इसे सामान्य-नीति की तरह ही देखा जाता है। हम इसे शिष्टाचार भी कह देते हैं।

यह सब समझते हुए भी, कोई झूठ का पक्षधर हो जाए तो उसके द्वारा भी कहा यही जायेगा कि 'सच बोलो; झूठ मत बोलो।' व्यवहार सदा सच पर ही टिका रहता है।

यह सत्य का लोक-व्यवहार पक्ष हुआ और सामान्य जीवन में यह होना ही चाहिए—ऐसा सभी मानते हैं। सत्य-साधना इसी व्यवहार का एक रूप है। लोक-व्यवहार में जो सच का पक्षधर होगा, वही अपने जीवन में सत्य की साधना कर सकता है।

साधना की बात आते ही धर्म की ओर ध्यान जाता है। हम किसी भी धर्म को देखें, सत्य उसका एक अंग अवश्य है। जैन मतावलंबियों के पांच महाव्रतों में से एक सत्य है। महात्मा गांधी के एकादश व्रतों में भी सत्य एक व्रत है। 'सत्य-धर्म' प्रचलित कथन है। गांधी तो धर्म या ईश्वर का अर्थ ही 'सत्य' मानते रहे हैं। वे तो यहां तक कहते हैं कि 'सत्य ही परमेश्वर' है। साधु-संन्यासी या पांच महाव्रतधारियों के लिए सत्य की साधना एक स्वाभाविक क्रिया है। अतः उनके लिए सत्य-साधना सहज है। लेकिन, सामान्य जन की बात हम सोचें तो पायेंगे कि ऐसे विरले ही लोग होंगे जो सत्य की साधना में अनवरत रत रहे हों। महात्मा गांधी उनमें से एक हैं, जो सार्वजनिक-राजनीतिक जीवन में भी सदा सत्य के आग्रही रहे। वे तो कहते ही थे—'धर्म से कोई संबंध नहीं रखने वाली राजनीति बिलकुल कूड़ा-करकट जैसी है, जिससे सदा दूर ही रहना चाहिए' और वे मानते थे—'मेरी राजनीति और मेरी अन्य सारी प्रवृत्तियां धर्म से ही जन्म लेती हैं।' गांधी बहुत साफ तौर पर बताते हैं—*'जो मनुष्य यह कहता है कि धर्म का राजनीति से कोई संबंध नहीं है, वह धर्म को नहीं जानता, ऐसा कहने में मुझे कोई संकोच नहीं होता और ऐसा न कहने में मैं अविनय करता हूं।'* ठीक इसी के साथ महात्मा गांधी धर्म को भी स्पष्ट कर देते हैं। वे कहते हैं—*'मैं मानवीय प्रवृत्ति से अलग किसी धर्म को नहीं जानता। उससे अन्य सब प्रवृत्तियों को नैतिक आधार मिलता है, जो और किसी तरह से नहीं मिलता और जिसके बिना जीवन 'निरर्थक शोरगुल' बन जाता है।'*

सत्य क्या है? महात्मा गांधी सरल-सा, लेकिन अत्यन्त गूढ़ उत्तर देते हैं—'जो हमारी अंतरात्मा कहे, वही सत्य है।' आगे चलकर वे इस बात को शिव और सुंदर के साथ जोड़ते हैं। 'सत्यं शिवं सुंदरं'—इसे कौन नहीं जानता है। गांधी कहते हैं कि सत्य को पा लेने पर कल्याण और सौन्दर्य स्वतः प्राप्त हो जाते हैं। अतः माना जा सकता है कि कल्याण के मार्ग पर चलने के लिए भी सत्य एक सक्षम वाहक है।

सत्य-साधना सदा निर्भयता पर ही अवलंबित है। लियो टॉल्सटॉय तो यहां तक कहते हैं—*'मुझे अपने से या दूसरों से झूठ नहीं बोलना चाहिए और न सत्य से भयभीत होना चाहिए, चाहे उसका कुछ भी परिणाम क्यों न निकले।'* वे बड़े ही मर्म की बात कहते हैं—*'झूठ न बोलने का मतलब है, सत्य से न डरना। बुद्धि और अंतरात्मा के निष्कर्षों को स्वयं से छिपाने के लिए बहाने न खोजना और जब दूसरे इसके लिए बहाने बनाएं तो उन्हें स्वीकार न करना, अपने चारों ओर के व्यक्तियों से मतभेद रखने में भयभीत न होना, इस बात से न घबराना कि हमारी बुद्धि और अंतरात्मा जो कुछ कहती है, उसे मानने वाला कोई दूसरा नहीं। इस बात से भी न डरना कि सत्य हमें किस स्थिति पर पहुंचा देगा। हमें यह दृढ़ विश्वास रखना चाहिए कि सत्य और अंतरात्मा की पुकार चाहे हमें किधर भी*→

अनाग्रही होने के लिए कृत-संकल्पित हों

❑ डॉ. सुगन बरंठ

धर्म का श्रद्धा से निकटतम संबंध है। जहां श्रद्धा आती है, वहां समर्पण का होना स्वाभाविक ही है। श्रद्धा और समर्पण जब एकत्रित हो जाते हैं, तब शंका के लिए कोई गुंजाइश नहीं रहती। इसमें खूबी इस बात की है कि हमारी श्रद्धा की कसौटी दूसरे करते रहते हैं, सतत हमें कहते हैं कि आपका समर्पण कहां कम है, आपकी श्रद्धा कैसे अटल होनी चाहिए...। साधु-संतों के सत्संग, प्रवचनों आदि में भी यही बात हमें बार-बार अनेक कथाओं व प्रवचनों के माध्यम से याद करायी जाती है।

गुरु की महिमा आजकल गलत तरीकों से हमलोगों के सामने रखा जा रहा है। कबीरजी को स्वयं से शंका हो गयी कि 'गुरु और गोविन्द' दोनों खड़े हों, तो पहले किसके चरण-वंदन करें? फिर स्वयं ही वे शंका का निरसन कर देते हैं—जिस गुरु ने गोविन्द तक पहुंचने का मार्ग बताया, उन्हीं का ही पहले चरण-वंदन करना होगा।

वैसे श्रद्धा और समर्पण में तीन तरह के धोखे सहज ही उपस्थित रहते हैं। पहला, दूसरों द्वारा टीका-टिप्पणी होने का, दूसरा, विवेक खोने का और तीसरा है अपने खोये विवेक के बारे में आग्रही हो जाने का। आग्रही होना तो अपने आप में अविवेक ही है।

इस स्थिति में महावीर की बतायी हुई 'धर्म की महिमा' को समझना होगा। जैन धर्म विश्व का एकमात्र धर्म है, जो शंका करना सिखाता है। ऐसा ही क्यों? जन्म किसलिए? उसका उद्देश्य क्या है? विश्व की निर्मिती किसने की? क्यों की? कब की? आदि... आदि ऐसे अनेकानेक प्रश्न हमारे मन में आदिकाल से रहे हैं। विज्ञान के जमाने में तो वे अधिक ही खड़े होंगे। विज्ञान हर मान्यता की चिकित्सा करता है। इसीलिए तो विनोबा कहते हैं—''अध्यात्म + विज्ञान = सर्वोदय (सबका भला)''। और ''राजनीति + विज्ञान = सर्वनाश''। विश्व के तमाम धर्मों की नींव में श्रद्धा औरप समर्पण है। श्रद्धा और समर्पण ये मानसिक भाव हैं। धर्म मानसिक स्तर पर ही रहे हैं। सवाल या शंका या ऐसा क्यों? यह विचार वैज्ञानिक है।

जैन धर्म एक ऐसा धर्म है, जिसका पूरा दर्शन (तत्त्वज्ञान) ही शंका की नींव पर खड़ा है। धर्म के बने रहने के लिए श्रद्धा और समर्पण जरूरी होने की बात सत्य है, तब तो जैन धर्म का अंत कब का हो जाना चाहिए। पर बात ठीक उल्टी है। विश्व के मुक्त चिन्तकों की दृष्टि से जगत के दो-तीन सम्मानीय धर्मों में जैन धर्म का समावेश होता है। क्योंकि जैसे-जैसे धर्म संगठित होते जाते हैं, वैसे-वैसे उसमें आदरणीय एवं अनुकरणीय उदात्त तत्त्व घटते जाते हैं। धर्म का दर्शन शंका की नींव पर खड़ा हो, धर्म शंका उपस्थित करने को सिखाता हो, तो शंका में जरूरी कोई जबरदस्त ताकत होनी चाहिए। शंका में उपस्थित इसी शक्ति को ढूंढ़ने का प्रयास हमें पर्युषण पर्व पर करना चाहिए।

कोई अगर जन्म से हिन्दू या अन्य मतावलम्बी है, पर जैसे-जैसे समझ विकसित

→*क्यों न ले जाए, वह झूठ पर आधारित जीवन से बुरा नहीं हो सकता।'* सत्य-साधना का बीज-मंत्र यही हो सकता है, जो कि हमें टॉलस्टॉय ने बताया है। जब तक हम यह न समझ लें कि—'झूठ पर आधारित जीवन से बुरा कुछ नहीं हो सकता'—तब तक सत्य के प्रति हम पूरी तरह आग्रहशील नहीं रह सकते।

यह सर्वमान्य मत है कि झूठ का सहारा तात्कालिक तौर पर ही राहतदायी होता है। असलियत अंततः सामने आती ही है। दूसरी ओर सत्यकथन तात्कालिक तौर पर अवश्य कष्टकर रहता है, पर दीर्घकालिक स्तर पर उसके सुफल ही निकलते हैं। जाहिर है कि झूठ व्यवहार किसी भी रूप में युक्तियुक्त नहीं हो सकता। फिर भी यह पाया जाता है कि अकसर लोग झूठ का सहारा ले ही लेते हैं। पूरी तरह से इससे बचने या मुक्त होने के लिए कोई प्रयत्नशील नहीं रहता। इसके लिए क्या उपाय हो सकते हैं?

सत्यकथन के लिए सामान्य जीवन में थोड़ी-सी आंतरिक तैयारी की ही आवश्यकता है। यदि हम तात्कालिक जोखिम उठा लेने को तैयार हो जाएं तो असत्य से बचा जा सकता है। झूठ का सहारा किसी हालत में नहीं लेना है और बहाने बनाकर बचने के उपाय नहीं खोजने हैं—इतना-भर दृढ़-निश्चय कर लिया जाए तो झूठ से बचने में कोई बाधा नहीं आ सकती है। हम सभी जानते हैं कि यह जीवन सत्य पर ही टिका हुआ है। मूलतः आदमी सत्य के प्रति ही झुकाव रखता है। प्रश्न सिर्फ यह है कि सत्य के प्रति यह 'झुकाव', सत्य के प्रति अडोल 'आग्रह' में बदल जाए।

आखिर मनुष्य होने के मानी क्या हैं? मनुष्य की देह धारण कर लेना तो प्रकृति प्रदत्त हुआ, पर देह धारण कर लेने के बाद मनुष्य होने के लिए जो कुछ करणीय होता है, उस ओर अग्रसर होना ही तो मनुष्य होना है। हम मनुष्य कहला सकें—इस ओर अभिमुख होना और इस ओर अनवरत सचेष्ट रहना ही मनुष्यता है। सत्य और प्रेम की साधना, करुणा और सहजीवन का अवलम्बन ही हमें मनुष्य बनाता है। ❑

हो और उसे समझ में आये कि धर्म संस्कार या अन्य कोई भी बात, जो हमें विरासत में मिली है, उसे बिना चिकित्सा किए स्वीकार करना ठीक नहीं; तो शंका करना, मिली जानकारी को सभी आयामों से परखना, परम्परा से मिले संस्कारों को जाँचना, जरूरी हो तो उसके खिलाफ जाकर भी सत्य को स्वीकार करना और कुल मिलाकर संस्कार जड़ता से मुक्त होने में असली अध्यात्म है। प्रसिद्ध चिन्तक, विचारक रमेशा ओझा कहते हैं, ''मुझे संस्कार जड़ता से छूटने में जिन-जिन विचारों का लाभ हुआ, उसमें जैन दर्शन का भी बड़ा योगदान है। पंडित सुखलालजी संघवी द्वारा लिखित ''जैन धर्म का प्राण' एवं सिद्धसेन दिवाकर को पढ़ने के बाद यह बात समझ में आयी कि इतना उदार धर्म भी कोई हो सकता है? विवेक रहित श्रद्धा और समर्पण की नींव ही हिला देने की ताकत रखने वाला धर्म समझने के बाद तो मैं रोमांचित हो उठा। श्रमण दर्शन (जैन एवं बौद्ध) ने जो विवेक और करुणा सिखायी है, उस परिप्रेक्ष्य में देखा तो ध्यान में आया की मेरा जन्म जिस धर्म में हुआ, उसके वर्तमान स्वरूप में वह कोई महान धर्म नहीं। मेरा धर्म महान नहीं, और सही अर्थ में पूछें तो केवल मेरा ही धर्म महान नहीं, यह मानने की छूट महावीर से मिलती है।''

महावीर की उंगली पकड़कर किसी विधर्मी की आंख खुल सकती है, तब जिनका जन्म ही महावीर की उंगली पकड़कर जैन धर्म में हुआ हो, उन सधर्मी (अन्य को जैनेतर या अजैन कहने की भाषा भी जैनों को इस्तेमाल नहीं करनी चाहिए) की नजरों पर आग्रह का पर्दा चढ़ा देखकर दुख होता है। आग्रह खुद में ही एक हिंसा है। इसके चलते आप दूसरे को अपने विवेक से चलने की छूट नहीं देते। अनाग्रही से सत्याग्रही होने तक आदमी पहुंच सकता है।

गांधी के सत्याग्रह में पहली बात यही है कि सत्य ग्राही होना चाहिए। जैन दर्शन की खासियत अनेकांत या स्याद्वाद है, जो इस विवेक का मूल आधार है। विवेक वैज्ञानिक दृष्टि का आधार है और यही है सत्याग्राही वृत्ति। विनोबा कहते हैं, ''इस सत्यग्राही वृत्ति के लिए मैं महावीर का दासानुदास हूं। महावीर वर्धमान थे, यानी जो कल थे, वह आज नहीं। चित्त का विकास, गुणों का विकास निरंतर''। गांधी के सारे कथन में एक बात बहुत महत्त्वपूर्ण है—'मेरे दो कथन में अंतर या भेद नजर आये तो, जो मैंने पहले कहा, वह छोड़ दो और बाद में जो कहा उसे सही मानो।'

महावीर के बारे में कहा जाता है कि उनके शिष्य अगर किसी नवागन्तुक को उनके पास लाते थे तो वे केवल इतना कहते *''जयं चरे, जयं चिट्ठे। जयमासे जयं सए। जयं भुंजंतों, भासंतों। पाव कम्म न बंधई।''* अर्थात विवेकपूर्वक चलने, रहने, बैठने, खाने और बोलने से पाप कर्म का बंध नहीं होता। फिर कहते *''बाकी बातें इन लोगों से सीख लो।''* महावीर में भूतमात्र अर्थात सृष्टि के यच्चयावत जीवों के लिए आत्यंतिक करुणा थी। शंका और विवेक की नींव पर समाज प्रबोधन करने वाले लोकोत्तर संत, गाडगे बाबा के व्याख्यान को हमें श्रवण करना एवं पढ़ना चाहिए। संसार के सारे जीवों के प्रति करुणा का भंडार ही इनमें मिलेगा।

दूसरे, हमें किसने कहा कि अपने जीवन में ही धर्म रक्षण करें, नहीं तो हमारा धर्म लुप्त हो जायेगा? 'समणसुत्तं' (जो जैन आगमों का सर्वमान्य सार है) में एक भी गाथा इस प्रकार की नहीं है। एक गाथा ऐसी बतायें, जिसमें महावीर ने अपने को धर्म-रक्षक ('शासन रक्षक' शब्दोपयोग कुछ जैन पंथों में होता है।) नियुक्त किया हो। महावीर ने कोई सम्पत्ति खड़ी नहीं की, जिसकी रखवाली करनी पड़े। उन्होंने विचार दिया है। आपके जो गले उतरे, आचरण कीजिए। आपका आचरण देखकर दूसरे अनुसरण करेंगे। पर आग्रह तो महावीर से विद्रोह हुआ। वर्तमान में ऐसे होते जा रहा है कि दूसरे धर्मो में श्रद्धा और समर्पण, जो उनकी नींव में है, उसके बिना धर्म टिकेगा ही नहीं, यह उन प्रस्थापित धर्मों की मान्यता है। उन्हीं मान्यताओं को जैन धर्मानुयायी भी दोहरा रहे हैं। अपने धर्म के शंका और विवेक के तत्त्वों को भूल रहे हैं। जो धर्म स्वयंप्रकाशी दीप है, उसे दूसरे धर्मों की पंक्ति में रखने की भूल जैन समाज के लोग कर रहे हैं।

तीसरी बात, किसी भी तत्त्व को जनमानस तक पहुंचने में शताब्दियां लग जाती हैं। विचार को आग्रह से मुक्त होकर बहने दें, तो वह लोगों के मन-मस्तिष्क और हृदय में स्थान पा लेगा। अनेकांत यह समग्र मानव जाति के लिए दिया गया विचार है। पर आग्रह के कारण वह मात्र जैनों का होकर रह गया है। शासन रक्षक बनकर अधीर होने की जरूरत नहीं, अंतिम विजय तो मानवता की ही होनी है। इस संसार चक्र में हमारा जीवन एक बिन्दु समान है। विनोबा कहते हैं कि एक दिन ऐसा आयेगा जब बकरी ईद पर बकरे के गले पर छुरी चलाते वक्त कसाई का भी हाथ कांपेगा। पर वह दिन जल्दी आ जाये, इसलिए उतावले होंगे तो वह दिन दूर होता जायेगा।

गांधी तो कहते हैं—''अहिंसा हमारे सामने कोई स्थूल वस्तु नहीं, जो आज हमारी दृष्टि के सामने है। किसी को न मारना तो है ही, कुविचार मात्र हिंसा है, उतावलापन हिंसा है, मिथ्या भाषण हिंसा है, द्वेष हिंसा है, किसी का बुरा चाहना हिंसा है। जगत के लिए आवश्यक वस्तु पर कब्जा रखना भी हिंसा है।'' हमारा छोटा-सा आयुष्य, जिसे हमें मानवता के विकास के लिए खर्च करना है और यही जीवन की सार्थकता भी है। हम छोटे आदमी हैं तो क्या हुआ। महावीर, बुद्ध के जितनी न हों, पर उनके एक अंश हो सकने की शक्ति तो हम में है। फिर भी सामान्य इनसान हैं, तो भूल हो जाती है। आग्रह, उतावलापन आ जाता है, द्वेष-भाव उत्पन्न हो सकता है। इसीलिए क्षमापना का दिवस होता है।

जगत में जैन धर्म एकमात्र है, जो क्षमा-याचना करने को सिखाता है। माफी तो मनुष्य तभी मांगता है जब भूल समझ में आये। भूल तब समझ में आती है, जब इनसान तटस्थ भाव, नीर-क्षीर विवेक से स्वयं को देख पाए। विवेक कब हो सकता है, जब मनुष्य दूसरे के सत्य और अपने असत्य की संभावना रखता हो। यह स्वीकार ही मानवीय पुरुषार्थ है और इसीलिए वर्धमान महावीर माने गये। फिर एक बार आप सभी से 'मिच्छामी दुकड़म'। ❑

अंतर्राष्ट्रीय सहिष्णुता दिवस-16 नवंबर पर विशेष

इस युग की आवश्यकता है विश्व एकता की शिक्षा

❑ डॉ. जगदीश गांधी

ईश्वर एक है, सभी धर्म एक हैं तथा संपूर्ण मानव जाति एक है, सभी प्रकार के पूर्वाग्रह दूर हों, व्यक्ति स्वयं सत्य की खोज करे, एक सहायक विश्व भाषा हो, नारी तथा पुरुष समान हैं, शिक्षा सभी के लिए हो, विज्ञान तथा धर्म में सामंजस्य हो, अधिक अमीरी तथा अधिक निर्धनता की समाप्ति हो, एक विश्व सरकार बने तथा संस्कृतियों की विविधता की रक्षा हो।

फारस में 12 नवंबर, 1817 को जन्मे बहाई धर्म के संस्थापक बहाउल्लाह ने 27 वर्ष की आयु में जिस काम को शुरू किया था, वह धीरे-धीरे विश्व के प्रत्येक भाग, प्रत्येक वर्ग, संस्कृति और जाति के करोड़ों लोगों की कल्पना और आस्था में समा गया है। बहाउल्लाह मानवजाति की परिपक्वता के इस युग के एक महान ईश्वरीय संदेशवाहक हैं। बहाउल्लाह का शाब्दिक अर्थ है—'ईश्वरीय प्रकाश' या 'परमात्मा का प्रताप'। बहाउल्लाह को प्रभु का कार्य करने के कारण तत्कालीन शासक के आदेश से 40 वर्षों तक जेल में असहनीय कष्ट सहने पड़े। जेल में उनके गले में लोहे की मोटी जंजीर डाली गयी तथा उन्हें अनेक प्रकार की कठोर यातनाएं दी गयीं। जेल में ही बहाउल्लाह की आत्मा में प्रभु का प्रकाश आया। 'बहाउल्लाह' ने प्रभु की इच्छा और आज्ञा को पहचान लिया।

बहाउल्लाह की सीख है कि परिवार में पति-पत्नी, पिता-पुत्र, माता-पिता, भाई-बहन, सभी परिवारजनों के हृदय मिलकर एक हो जाये, तो परिवार में स्वर्ग उतर आएगा। इसी प्रकार सारे संसार में सभी के हृदय एक हो जायें तो, सारा संसार स्वर्ग समान बन जायेगा। बहाई धर्म की प्रार्थना है कि *''एक कर दे हृदय अपने सेवकों के हे प्रभु, निज महान उद्देश्य उन पर कर प्रगट मेरे विभो।''* बहाउल्लाह ने कहा है कि 'विश्व एकता' की शिक्षा इस युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है और सब धर्मों का सार मानव-मात्र की एकता स्थापित करना है। यह आज के युग की समस्याओं का एकमात्र समाधान है। परमात्मा ने बहाउल्लाह के माध्यम से हृदय की एकता का सन्देश पवित्र पुस्तक 'किताबे अकदस' के द्वारा सारी मानव जाति को दिया।

मानव जीवन में लगभग 200 वर्ष पूर्व भौतिकता का प्रभाव बढ़ जाने के कारण मानव से मानव की दूरियां बढ़ती जा रही थीं, और मानव का जीवन दुःखों से भरता जा रहा था, तब दयालु परमपिता परमात्मा ने टुकड़े-टुकड़े में बंटे हुए मानव जीवन को 'हृदयों की एकता' के सूत्र में पिरोकर पारिवारिक एकता, विश्व एकता तथा मानव-कल्याण के लिए इस युग के अवतार बहाउल्लाह को धरती पर भेजा। मानव समाज आज नवीन और महान युग में प्रवेश कर रहा है। बहाउल्लाह का उद्देश्य आज के समाज को विखंडित करने वाले परस्पर विरोधी विचारों की विविधता पर जोर न देकर, उन्हें एक मिलन-बिन्दु पर लाना है। बहाउल्लाह का उद्देश्य अतीत काल के अवतारों की महानता अथवा उनकी शिक्षाओं के महत्त्व को कम करना नहीं, बल्कि उनमें निहित आधारभूत सच्चाइयों को वर्तमान युग की आवश्यकताओं, क्षमताओं, समस्याओं और जटिलताओं के अनुरूप दुहराना है। बहाई धर्म की आधारशिला मानव मात्र की एकता है। बहाई धर्म पूरे विश्व से मतभेद समाप्त कर एक शांतिमय एवं खुशहाल विश्व समाज की परिकल्पना पर अवलम्बित है। बहाई धर्म विश्व का ऐसा धर्म है, जो सारी दुनिया को प्रेम, एकता एवं आध्यात्मिकता के पवित्र सूत्र में बांधने के लिए कार्य कर रहा है।

बहाई धर्म विश्व में समस्त धर्मों का सम्मिश्रण है, यह एक ऐसा धर्म है, जो किसी भी धर्म की अवहेलना नहीं करता, बल्कि सभी धर्मों को एक समान मानता है व सभी धर्मों, उनके अवतारों व पैगम्बरों का आदर करना सिखाता है। बहाई धर्म परमात्मा और इसके अवतारों की एकता को स्वीकार करता हुआ 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सिद्धान्त का समर्थन व पोषण करता है। बहाई शिक्षाओं के अनुसार हमारे जीवन के मूलतः चार उद्देश्य हैं :—

1. परमात्मा को 'जानना' तथा उसकी 'पूजा' करना। परमात्मा को 'जानने' के मायने हैं, युग-युग में विभिन्न अवतारों के माध्यम से दिये गये पवित्र ग्रंथों में जाकर परमात्मा की इच्छा तथा आज्ञा को जानना तथा पूजा के मायने हैं, प्रभु की इच्छा के अनुसार 'प्रभु का कार्य' करना।

2. प्रभु कार्य के लिए प्रगतिशील धर्म के अंतर्गत युग-युग में परमात्मा की ओर से अवतरित अवतारों—राम, कृष्ण, बुद्ध, ईशु, हज़रत मोहम्मद, गुरुनानक, महावीर, हज़रत मूसा, हज़रत अब्राहीम, बहाउल्लाह आदि—तथा उनके द्वारा दिये गये पवित्र ग्रंथों में उद्घाटित ईश्वरीय शिक्षाओं—मर्यादा, न्याय, सम्यक् ज्ञान, करुणा, भाईचारा, त्याग, अहिंसा, हृदय की एकता, आध्यात्मिक मूल्यों—को धारण करना।

3. मनुष्य योनि में हमारा जन्म अपनी आत्मा के विकास के लिए हुआ है। हमें अपनी आत्मा के विकास द्वारा अपनी अगली दुनिया (दिव्यलोक) की तैयारी करनी चाहिए, इस हेतु से हमें अपने प्रत्येक कार्य-व्यवसाय को 'प्रभु का कार्य' मानते हुए पवित्र भावना से करना चाहिए। हमारा हमेशा यही प्रयत्न होना चाहिए कि हमारे प्रत्येक कार्य रोजाना परमात्मा की सुंदर प्रार्थना बने।

4. परिवार, विद्यालय तथा समाज को मिलकर प्रत्येक बालक में बाल्यावस्था से ही भौतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक गुणों का

संतुलित विकास करने का वातावरण निर्मित करना चाहिए। इस प्रकार मानव सभ्यता को आगे बढ़ाकर उसके अंतिम लक्ष्य अर्थात धरती पर आध्यात्मिक सभ्यता स्थापित करने का प्रयत्न करना चाहिए।

वर्तमान परस्थितियां प्रत्येक मनुष्य को इस युग के अवतार को पहचाने तथा उनकी शिक्षाओं पर चलने के लिए निरंतर प्रेरित कर रही हैं। परमात्मा की ओर से बहाउल्लाह को संदेश आया कि वह पिछले सभी धर्मों के प्रतीक्षित युगावतार हैं। वे वह हैं, जो पूरी मानवता को एकता और शांति प्रदान करेंगे। प्रायः सभी धर्मों के संस्थापकों या अंतिम ईश्वरीय अवतारों द्वारा भविष्य में एक ऐसे ईश्वरीय अवतार के आगमन की भविष्य-वाणियां की गयीं, जो उनके धर्म को आगे ले जाकर विकास की चरम स्थिति तक पहुंचा दे, और समस्त संसार को उस एक विश्व-धर्म का अनुयायी बना दे। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार विष्णु के दसवें कल्कि अवतार के आने की बात कही गयी है, वह संसार भर से पाप का नाश करके नये सतयुग का संस्थापक होगा, बौद्ध धर्मावलम्बी स्वयं भगवान बुद्ध द्वारा की गयी भविष्यवाणियों के अनुसार एक महान धर्मावतार 'मैत्रेय अमिताभा' की प्रतीक्षा कर रहे हैं, स्वयं ईसामसीह ने अपने दिव्य पिता की पूर्ण आभा के साथ पुनः आने का वचन दिया है। पृथ्वी के समस्त जोरास्ट्रियन जो पारसी धर्म के अनुयायी हैं, अपने ग्रंथों की भविष्यवाणियों के अनुसार एक महान ईश्वरीय अवतार 'शाह बहराम वरजावन्द' की प्रतीक्षा कर रहे हैं, इस्लाम धर्म की पुस्तकों के अनुसार समस्त मुसलमानों का भी यह विश्वास है कि कयामत के वक्त हज़रत इमाम मिंहदी का जहूर होगा और उनके बाद मसीहा का पुनरागमन 'रूहूल्लाह' के रूप में होगा। सिख धर्म में भी उनके दसवें गुरु गोविन्दसिंह जी के वचनानुसार एक 'निष्कलंकी अवतार' कल्कि नाम से प्रकट होगा।

बहाई जीवन दर्शन के कुछ सिद्धांत हैं—ईश्वर एक है, सभी धर्म एक हैं तथा संपूर्ण मानव जाति एक है, सभी प्रकार के पूर्वाग्रह दूर हों, व्यक्ति स्वयं सत्य की खोज करे, एक सहायक विश्व भाषा हो, नारी तथा पुरुष समान हैं, शिक्षा सभी के लिए हो, विज्ञान तथा धर्म में सामंजस्य हो, अधिक अमीरी तथा अधिक निर्धनता की समाप्ति हो, एक विश्व सरकार बने तथा संस्कृतियों की विविधता की रक्षा हो। बहाई पवित्र ग्रंथ 'किताबे अकदस' हमें प्रथम परामर्श यह देती है कि "हे आत्मा के पुत्र, जब तू एक शुद्ध, दयालु एवं ईश्वरीय प्रकाश से प्रकाशित हृदय धारण करेगा, तब तुझे यह सारी सृष्टि अपने घर जैसी प्रतीत होगी।" हमारा मानना है कि अब समय आ गया है कि हम सबके हृदय ईश्वरीय प्रेम में एक हो जाये क्योंकि सभी धर्मों का स्रोत एक परमात्मा है।

बहाउल्लाह ने तीन प्रमुख शिक्षाएं दी हैं—पहला, कभी म्यान से तलवार नहीं निकलेगी। सभी अहिंसा का व्यवहार करेंगे और धरती से युद्ध समाप्त हो जायेगा। दूसरा, वे एक हजार वर्ष के लिए अवतार के रूप में अपनी शिक्षाओं से प्रभावित करेंगे। इसके प्रभाव से संपूर्ण विश्व में एकता तथा शांति आ जायेगी और मानव जाति निरंतर प्रगति करेगी। तीसरा, इस क्षण से धरती में जितनी भी ईश्वर की सृजित वस्तुएं हैं, उनमें नयी क्षमताएं उत्पन्न हो जायेंगी, जिसके फलस्वरूप एक नयी चेतना जाग्रत हो जायेगी और उसी दिन से विज्ञान के क्षेत्र में आविष्कार होने आरम्भ हो गये। बहाउल्लाह ने कहा था कि "वह दिन जल्द आयेगा, जब सारे विश्व के लोग उनकी शिक्षाओं को स्वीकार करेंगे।"

धरती पर आध्यात्मिक साम्राज्य की स्थापना दो चरणों में होगी। बहाई संत अब्दुलबहा ने लगभग 100 वर्ष पूर्व कहा है कि "स्वर्णिम सभ्यता का ध्वज सही मायने में तब फहरायेगा, जब दुनिया के हृदय-स्थल में विलक्षण एवं श्रेष्ठ विचारों वाले राष्ट्राध्यक्ष संपूर्ण मानव जाति की खुशहाली के लिए एक साथ मिलकर दृढ़-निश्चय एवं दूरदृष्टि के साथ विश्व-शांति स्थापित करने का बीड़ा उठायेंगे।" पहले चरण में लघु शांति (लेजर पीस) की स्थापना विश्व के सभी देशों के राष्ट्राध्यक्षों तथा शासनाध्यक्षों के बीच एकता होने से होगी। दूसरे चरण में महान शांति (ग्रेटर पीस) तब आयेगी, जब व्यापक रूप से हृदय-परिवर्तन होगा। इस प्रकार धरती पर आध्यात्मिक साम्राज्य की स्थापना का लक्ष्य पूरा होगा। ❑

कविता

विश्व ग्राम की करो कल्पना

❑ दुर्गेश नन्दन त्रिपाठी

विश्व ग्राम की करो कल्पना
हे देव तुल्य तुम मानव!
अच्छे इनसान की करो कल्पना
हे देव तुल्य तुम मानव!

राष्ट्रों की दीवार को तोड़ो
हे देव तुल्य तुम मानव!
जाति, पंथ के बन्धन छोड़ो
हे देव तुल्य तुम मानव!

छोटी-छोटी लालच छोड़ो
हे देव तुल्य तुम मानव!
मानवता से नाता जोड़ो
हे देव तुल्य तुम मानव!

आओ मिलकर हम बनायें
इक ऐसा संसार
जिसमें प्रेम की नदियां हों
हो सब धर्मों का सार!

ऐसे संसार की करो कल्पना
हे देव तुल्य तुम मानव!
विश्व ग्राम की करो कल्पना
हे देव तुल्य तुम मानव! ❑

वंशवाद की जय हो

❑ प्रो. डॉ. रामजी सिंह

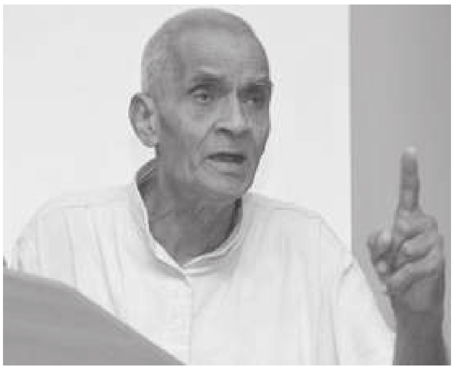

आदिम सभ्यता तंत्र मुक्त था, भले ही हम उसे अराजक स्थिति का द्योतक घोषित करें। रूसो के शब्दों में तो यह स्थिति चैन की बंशी बजाने की थी। मनुष्य स्वभाव से तो अच्छा होता ही है। यदि हम डार्विन या हॉब्स आदि के अनुसार मनुष्य को स्वभावतः दुष्ट मान भी लें, तो इससे सम्पूर्ण मानव जाति का अपमान तो है ही, निराशावाद भी इसमें कमाल का है। यदि मनुष्य स्वभाव से ही दुष्ट है, तो फिर सत्कार्यवाद के अनुसार उससे किसी अच्छाई की उम्मीद नहीं हो सकती *''न हि नीलम् सहस्रेन शिल्पी पितम् कर्तुंम शक्यते।''* आदिम सभ्यता के बाद के राज्यशास्त्र में एकायतन (राजतंत्र) के बाद अल्पायतन (सामंतवाद) और फिर बहुआयतन (बहुमत का तंत्र) आया। यदि हम सर्वायतन की कल्पना अभी छोड़ भी दें तो बहुमत आधारित प्रतिनिधि सत्तात्मक लोकतंत्र को बेहतर अवधारणा माना जा सकता है। लिंकन की शब्दावली में जनता का, जनता के द्वारा, जनता के लिए ही लोकतंत्र का बोधमंत्र है। परन्तु आज का लोकतंत्र दलीय प्रथा या दलवाद पर आश्रित है। इसलिए इसमें शासन पर आरूढ़ होने के लिए ग्रहित से ग्रहित कर्म की संभावना अनिवार्यता की तरफ बढ़ती जा रही है। हमारे संविधान निर्माताओं पर संसदीय प्रजातंत्र की पद्धति का इतना बोझ अथवा प्रभाव था कि उन्होंने इसको ही हमारे शासन तंत्र की संरचना का मूलाधार मान लिया। आज लोकतंत्र का सीधा अर्थ हो चुका है दलीय लोकतंत्र, जिसमें व्यक्ति गौण हो जाता है और दल को अपने स्थान पर बनाए रखने के लिए दलपतियों का नानाविध राजनैतिक दुराचार देखा जा सकता है। इसलिए गांधीजी ने आधुनिक संसदीय लोकतंत्र के विषय में कहा था ''यह तथाकथित लोकतंत्र है, यह तो सचमुच में फासिस्टवाद और नात्सीवाद है। यह लोकतंत्र का केवल ऊपरी आवरण भर है।'' वस्तुतः इसके साथ अनेक प्रकार के सामाजिक और राजनैतिक दोष अपरिहार्य हैं। जैसे—जन्म-सत्तावाद, धन-सत्तावाद, शस्त्र- सत्तावाद आदि।

वर्तमान भारतीय परिप्रेक्ष्य में भ्रष्टाचार एक अपरिहार्य शिष्टाचार बन चुका है। इसके साथ ही एक संक्रामक बीमारी के रूप में 'वंशवाद' को भी देख सकते हैं, जिससे लोकतंत्र की बुनियाद भी हिल सकती है। मुख्य रूप से वंशवाद तो राजतंत्र, सामंतवाद और सम्प्रदायवाद के रूप में देखने को मिलता है। लेकिन, आज यदि वर्तमान परिप्रेक्ष्य को देखें तो पंचायत स्तर से लेकर संसदीय स्तर तक वंशवाद की काली छाया दिनोंदिन प्रगाढ़ हो रही है। भारत में नेहरूजी के बाद नेहरू का वंशवाद चला, जो आज तक कायम है। ''महाजनेन गत सो पन्था'' के अनुसार अब तो राजनीति के सभी स्तरों पर वंशवाद प्रकृष्ट रूप से देखा जा सकता है। इस वृत्ति के लिए हम केवल राजनैतिक प्रतिनिधियों को एकाकी दोषी नहीं मान सकते। इसके लिए हम सब जिम्मेदार हैं और न ही वंशवाद केवल राजनैतिक संस्थाओं में व्याप्त है, बल्कि हमारे माननीय सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के साथ-साथ उच्च भारतीय सेवाओं में वंशवाद के कीटाणु अच्छी तरह द्रष्टव्य हैं। यही नहीं, समाज के अन्य विभागों जैसे व्यवसाय, फिल्म निर्माण, उच्च अध्यापन, पेशेवर शिक्षा आदि में भी वंशवाद का कुछ हद तक अनजाने, लेकिन अधिकांशतः सोचा समझा अधिकार दिखायी पड़ता है। इससे भारतीय शासनतंत्र का लगभग पूरा भाग कुछ मुट्ठियों में सिमटता जा रहा है, जो एक गंभीर खतरा है। हमारे राजनेतागण इस स्थिति के जिम्मेदार हैं और सर्वाधिक दोषी भी। क्योंकि ''यथा राजा तथा प्रजा'' एक मान्य सिद्धांत है। इसलिए वंशवाद रूपी इस सामाजिक संक्रामक रोग को दूर करने के लिए केवल चिन्तन ही नहीं बल्कि संवैधानिक, राजनैतिक और शैक्षणिक उपाय करने होंगे। इसका बिन्दुवार उल्लेख निम्नवत है :—

वंशवादी राजनीति का सीधा विरोध : जिस प्रकार आरक्षण सिद्धांत के अनुसार कुछ विशेष वर्गों को बहिष्कृत किया जाता है ताकि वंचितों को अवसर प्राप्त हों, उसी प्रकार हमें वंशवादी राजनीति को बढ़ावा दे रहे राजनैतिक दलों, संस्थाओं और राजनेताओं को चिह्नित करना होगा ताकि सरकार द्वारा प्रदत्त सेवा के पद एक ही जगह या कुछ जगहों पर लाभ के लिए केन्द्रित न हो जाए।

समान शिक्षा : भारतीय लोकतांत्रिक सिद्धांत में भले ही सभी व्यक्तियों को बराबर माना जाता है, जहां प्रत्येक व्यक्ति एक मत देने का अधिकारी है। समान शिक्षा सामाजिक समानता के लिए एक आवश्यक विधान है। आज समाज में उस वर्ग के लोग, जो अच्छे शिक्षण संस्थाओं में जाने के लिए पैसे जुटा सकते हैं, मुख्यतः वे ही सरकारी प्रशासन में काबिज हो जाते हैं। शिक्षा सामाजिक सशक्तिकरण का एक माध्यम है और यदि शिक्षा समान न हो तो समाज में समानता एक दिवास्वप्न है।

सामाजिक समता : भारत में सात धर्म, लगभग दो सौ पंथ और केवल हिन्दू समाज में साढ़े पांच हजार जातियां हैं। इसलिए इसके विभिन्न विभागों में अपना वर्चस्व बनाने की अस्वस्थ प्रतियोगिता स्वाभाविक है। धर्म की भावना पर कोई प्रतिबंध नहीं होना चाहिए। परन्तु जिस प्रकार धार्मिक मान्यताओं में किसी प्रकार का बंधन नहीं है, उसी प्रकार समाज की दूरदृष्टि से इनके बीच की पारस्परिक दूरी कम की जा सकती है। इसमें अंतर्जातीय, अंतर्धार्मिक या अंतर्प्रान्तीय विवाह को प्रोत्साहित करना आवश्यक है।

काम का अधिकार : जैसे संविधान में प्रत्येक को जीवन का अधिकार है, उसी प्रकार हर व्यक्ति को काम का अधिकार मिलना चाहिए। क्योंकि जीविका के बिना जीवन असम्भव है। आज विश्व में साम्यवादी देशों के अलावे अन्य देशों में भी नागरिकों को काम का अधिकार दिया गया है। जिन देशों में काम का अधिकार नहीं है, वहां बेरोजगारों को बेरोजगारी भत्ता दिया जाता है। हां, इनकी राशि भीखमंगे जैसी न हो।

लैंगिक समानता : देश की आधी आबादी में 5 प्रतिशत भी आर्थिक, प्रशासनिक, न्यायिक अथवा राजनैतिक कार्यों में संलग्न या नियोजित नहीं है। यदि पिछड़ापन आरक्षण का मानदंड है तो यह मानना होगा कि महिलाएं सबसे अधिक पिछड़ी हैं, उन्हें सबसे पहले और सभी क्षेत्रों में आरक्षण का लाभ मिलना चाहिए।

आर्थिक समता : विषमता और लोकतंत्र साथ-साथ नहीं चल सकते। इसलिए वैश्विक स्तर पर समाजवाद और साम्यवाद को सामाजिक न्याय और शासन का श्रेयस्कर नुस्खा माना गया था। पंडित नेहरू के समय समाजवादी ढांचे के बाद लोकतांत्रिक समाजवाद का विचार जमीन पर आया। जिसके कारण बड़े-बड़े सामाजिक उद्यमों पर समाज का अधिकार था। औद्योगिक क्षेत्रों में पूंजी के एकाधिकार के नियमन के लिए भी कई योजनाएं उपस्थित की गयी थीं। किसी भी सामाजिक उद्योग में 51 प्रतिशत पूंजी सरकार के हाथ में थी। 1977 की जनता पार्टी की सरकार के समय आर्थिक विषमता की नियमन रेखा 1 से 10 प्रतिशत मानी गयी थी। परंतु आज इस देश में आर्थिक विषमता दस लाख गुनी बढ़ गयी है। इस स्थिति में लोकतंत्र पूंजीपतियों के यहां गिरवी रखी हुई मानी जानी चाहिए। समता के बिना स्वतंत्रता व्यर्थ की बकवास है। इस पर जितना ही विलम्ब होगा, देश में विद्वेष और हिंसा बढ़ती जायेगी।

वंशवाद और लोकतंत्र परस्पर प्रतिरोधी शत्रु है। वंशवाद केवल आर्थिक और राजनैतिक नहीं बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक संक्रामक रोग है। भारत की संवैधानिक स्वच्छता और लोकतांत्रिक मर्यादा की रक्षा के लिए वंशवाद की समाप्ति अनिवार्य आवश्यकता है, अन्यथा नेपाल में राजशाही और राणाशाही तथा राणाशाही और लोकशाही का जो अन्तर्द्वन्द्व हुआ, उसकी सम्भावना भारत में भी असम्भव प्रतीत नहीं होती, भले ही दोनों देशों की राजनैतिक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भिन्न रही हो। वंशवाद पर संयमन और नियमन की शुरूआत राजनीति से होनी चाहिए क्योंकि "सर्वे धर्मा राजधर्म निमग्ना"। इसके बिना भारतीय लोकतंत्र का भविष्य उज्ज्वल नहीं हो सकता। ❑

सर्वधर्म समभाव एवं सद्भावना कूच

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर हो रहे हमलों के खिलाफ नागरिक सम्मेलन

29 अक्टूबर 2015 को दिल्ली में सर्व सेवा संघ की कार्यसमिति ने देश के विभिन्न भागों में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर हो रहे हमले एवं असहिष्णुता पर अपनी गहरी चिन्ता व्यक्त की।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता लोकतंत्र की आत्मा है। हर नागरिक को अपनी राय रखने का अधिकार है, भले ही वह सरकार की राय से भिन्न हो। पिछले दिनों धर्म के नाम पर उन्माद पैदा कर एक निर्दोष नागरिक की हत्या कर दी गयी। सर्व सेवा संघ नागरिकों के अभिव्यक्ति की आजादी के अधिकारों की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध है।

इन परिस्थितियों के मद्देनजर सर्व सेवा संघ, संपूर्ण क्रांति राष्ट्रीय मंच एवं अन्य सहमना संगठनों की ओर से सद्भावना, सर्वधर्म समभाव एवं राष्ट्रीय एकता के लिए **बिसाहड़ा** (दादरी के पास) से **बापू की समाधि** (राजघाट, नयी दिल्ली) तक एक **शांति कूच** (पीस मार्च) निकालने का निर्णय किया है। 29 नवंबर 2015 (रविवार) को सुबह 9.30 बजे बिसाहड़ा गांव स्थित राणासंग्राम सिंह इंटर कॉलेज में सर्वधर्म प्रार्थना के साथ इस कार्यक्रम की शुरुआत होगी *(संपर्क : श्री मनोज कुमार, मो. 9312660364)*। यात्रा 30 नवंबर को सुबह 10 बजे बापू की समाधि, राजघाट, दिल्ली पहुंचेगी, जहां सर्वधर्म प्रार्थना की जायेगी।

30 नवंबर को ही दोपहर 2 बजे से **जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय युवा केन्द्र,** *219, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग (गांधी शांति प्रतिष्ठान व तिलक ब्रिज रेलवे स्टेशन के पास)* में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर हो रहे हमलों के खिलाफ **श्री कुलदीप नैयर** की अध्यक्षता में नागरिक सम्मेलन होगा।

सभी लोकसेवकों, सर्वोदय मित्रों एवं सद्भावना के लिए कार्यरत नागरिकों से इस कार्यक्रम में शामिल होने की अपील है। दिल्ली से बिशाहड़ा जाने के लिए 29 नवंबर, 2015 को सुबह 6 बजे, **7-जंतर-मंतर रोड** (फोन : 011-233679) से वाहनों की व्यवस्था की गयी है।

कैसे पहुंचें : बिसाहड़ा, दादरी रेलवे स्टेशन से 5 किमी एवं दिल्ली से करीब 50 किमी की दूरी पर है। दादरी, गाजियाबाद के बाद दूसरा स्टेशन है। दिल्ली, शाहदरा एवं गाजियाबाद से दादरी जाने के लिए गाड़ियां मिलती रहती हैं। दादरी रेलवे स्टेशन से बिसाहड़ा के लिए ऑटोरिक्शा मिलेगा। दिल्ली के अंतर्राष्ट्रीय बस अड्डा (कश्मीरी गेट) से अलीगढ़, इटावा आदि स्थानों पर जाने वाली बसें दादरी होकर जाती हैं।

(महादेव विद्रोही)
अध्यक्ष, सर्व सेवा संघ
मो. 9428825908

(भवानीशंकर कुसुम)
संयोजक, सम्पूर्ण क्रांति राष्ट्रीय मंच
मो. 9166144290

इस तपन के बीच आओ

❑ चिन्मय मिश्र

''हमेशा गलती की गुंजाइश है,
तुम्हारे कहने में; करने में,
इतना सोचकर जी सको
तो आसानी होगी मरने में।''

—भवानी प्रसाद मिश्र

पिछले कुछ महीनों से, विशेषकर जनगणना-2011 के धर्म आधारित जनसंख्या के आंकड़े जारी होने के बाद देश में बढ़ रही साम्प्रदायिकता, कटुता और असहिष्णुता ने आजादी के बाद पहली बार ऐसा खौफनाक वातावरण उत्पन्न कर दिया है, जिससे भारत नामक 'विचार' को जूझना पड़ रहा है। रामजादे और हरामजादे से लेकर कर्नाटक में कुलबर्गी की हत्या, दादरी में अखलाक को पीट-पीट कर मार डालना, हिमाचल प्रदेश में गाय तस्करी के संदेह पर ड्राइवर व सहायक को सरेआम मार डालना, जम्मू कश्मीर के विधायक इंजीनियर अब्दुल राशिद शेख की पहले विधानसभा में पिटाई एवं दिल्ली में पत्रकार वार्ता के दौरान उन पर स्याही फेंकना, हरियाणा के मुख्यमंत्री का वक्तव्य कि यदि मुसलमानों को भारत में रहना है तो उन्हें गोमांस खाना छोड़ना होगा, पंजाब में गुरुग्रंथ साहब के अपमान के बाद फैली अराजकता, दिल्ली में 5 वर्ष से कम उम्र की लड़कियों के साथ बलात्कार, फरीदाबाद में घर में आग लगाकर दो दलित बच्चों को जिन्दा जला देना आदि अनादि। इस अंतहीन लम्बी फेहरिस्त से क्या हमें डर नहीं लगता? और हम अपने आसपास रुककर नहीं देखना चाहते?

साहित्यकारों द्वारा अपना सम्मान लौटाना भी हमारे मध्य आय वर्ग को समझा नहीं पा रहा है कि विचारशून्य और कट्टरता के चलते एक देश का सम्मान कभी भी कायम नहीं रह सकता। गुलाम अली को या पाकिस्तानी क्रिकेट बोर्ड के शहरयाद को मुम्बई से बहिष्कृत कर देने वाली शिवसेना केन्द्र व राज्य दोनों स्तरों पर भाजपा नीत सरकार का हिस्सा है। वित्तमंत्री अरुण जेटली सम्मान लौटाने पर लेखकों को लताड़ते हैं, न्यायाधीशों की नियुक्ति संबंधी फैसले पर सर्वोच्च न्यायालय की कठोरतम शब्दों में निन्दा करते हैं, शिव सैनिकों के व्यवहार को गुंडागर्दी करार देते हैं और इस सबके बाद अंततः बारामती में शरद पवार के घर पर चैन की नींद सो जाते हैं। प्रधानमंत्री भी बिहार चुनाव से थककर अब अपनी मन की बात और अफ्रीका भारत सम्मेलन की तैयारी में जुट गए हैं। देश में बढ़ती असहिष्णुता पर सीधी टिप्पणी से लगातार बचना अब उनकी आदत बन गयी है। सरकार की असफलता भी चहुंमुखी होती जा रही है। धार्मिक व सामाजिक असहिष्णुता के खतरनाक स्तर पर पहुंच जाने के साथ ही साथ, अब दालों के भाव भी आसमान को छू गए हैं। अधिकांश भारतवासी, जिसमें से करीब 50 प्रतिशत कुपोषित बच्चे व महिलाएं शामिल हैं, के लिए प्रोटीन का एकमात्र माध्यम दाल भी अब पहुंच और थाली से बाहर हो गयी है।

दूरदर्शन जैसे सरकारी भोपू से लगातार प्रचारित किया जा रहा है कि दिल्ली के केन्द्रीय भंडार एवं 'सफल' स्टोरों से 120 रुपये किलो तुअर दाल बेची जा रही है। वैसे तो ये दिल्ली के लिए ही पर्याप्त नहीं है और दिल्ली भारत का प्रतिनिधित्व अवश्य करती है लेकिन वह अपने आप में सम्पूर्ण भारत नहीं है। परंतु असहिष्णुता और महंगाई दोनों ही मोर्चों पर भारत का राजनीतिक व प्रशासनिक तंत्र पूरी तरह से असफल साबित होता जा रहा है। पंजाब में जिस तरह के हालात पैदा हो रहे हैं वह खालिस्तान आंदोलन के काले दिनों की याद दिला रहे हैं। वहीं खान-पान के बहाने मुसलमानों पर बन रहा मानसिक दबाव किसी भी क्षण फट सकता है। भवानी बाबू ने लिखा है :—

मौत के इस उजाले में
आदमी को एक समझो
और अपनी समझ को
शोर के ऊपर उठाओ
आज चुप बैठो नहीं
हे इस तपन के बीच आओ

परंतु अधिकांश देशवासी तपन के बीच आने के बजाए कोने में खड़े होकर इससे अपनी हथेलियां सेंक रहे हैं और इस ताप से अपनी ठंड मिटाना चाह रहे हैं। परंतु किसी और के घर में लगी आग हमें भी निश्चय ही जलाकर खाक कर देगी। विभाजन की त्रासदी और उसके पहले का घटनाक्रम अब लगातार दोहराने की आवश्यकता नहीं है। दो पीढ़ियों के समयकाल में हम और पाकिस्तान दो नस्ल नहीं बन गए हैं। भारत में रहने वाले हम सभी एक ही नस्ल के हैं और हमें इसे अत्यन्त विनम्रता से स्वीकार कर लेना चाहिए। एक ही शहर में राम और रावण दोनों के मंदिर भी सिर्फ भारत में ही हो सकते हैं। इस विरोधाभास को हम किस आधार पर स्वीकार कर रहे हैं? एक विशिष्ट जाति वर्ग अपने को रावण से जोड़कर गौरवान्वित कैसे महसूस कर सकता है? परंतु हम अपने अतीत में झांककर कभी हिन्दू मुस्लिम सौहार्द के विशिष्ट उदाहरणों पर गौर नहीं करते।

पिछली शताब्दी के एक सूफी कवि नजीर का जन्म उत्तर प्रदेश के गाजीपुर में हुआ था। अपनी प्रेमकथा संबंधी एक पुस्तक को जारी करते समय उन्होंने लिखा था :—

हिजरी तैंतीस सौ पैंतीसा
था जैकोद मास चौबीसा
संमत उन्नीस सौ चौहत्तर
भादों बदी दुवादस अंतर
जुमड़ा का दिन जानो तुरकाना
सुक का दिन जानो हिन्दवाना
करके बहुत कष्ट कलेसा
यहि दिन कथा कियो मैं सेसा

इसका भावार्थ है, ''इस प्रेमकथा की

समाप्ति मैंने उस दिन की जब हिजरी सन् 1335 के जैकाद महीने की चौबीसवीं तारीख थी। उस दिन संवत 1974 के भादों महीने के कृष्णपक्ष की द्वादशी तिथि पड़ती थी और दिन शुक्रवार था। जो मुसलमानों के अनुसार जुमा कहलाता है।'' यह हमारे प्रेम की साझी विरासत है जो समानांतर चलती रही है। भारत, भारत इसीलिए है क्योंकि वह पाकिस्तान या ईरान नहीं बनना चाहता था। वह अमेरिका और यूरोप भी नहीं बनना चाहता था। इसी के चलते पं. जवाहरलाल नेहरू अपनी दूरदर्शिता से गुट निरपेक्ष आंदोलन के प्रणेता बने। वह साम्प्रदायिकता और अति पूंजीवाद के खतरे और परिणाम दोनों से अच्छी तरह से वाकिफ थे। इससे पहले महात्मा गांधी भी हमें यह सब अच्छे से समझा चुके थे। पिछले 25 वर्षों में हमने जिस नव-उदारवादी सोच को बढ़ावा दिया है उसका परिणाम तो साम्प्रदायिकता और बढ़ती भूख और गरीबी ही है। इसके बावजूद हम अब भी भारत को एक विशिष्ट इकाई मानने को तैयार नहीं हैं। हम अपना यह आत्मविश्वास खो चुके हैं कि वर्तमान संकट का हल अपने देशज तरीकों और माध्यमों से ही ढूंढ सकते हैं। जैसे ही समाज बढ़ती आर्थिक विषमताओं की ओर ध्यान देना प्रारम्भ करता है, ठीक उसी समय साम्प्रदायिकता एवं आपसी जातिगत वैमनस्य भी फूट पड़ते हैं। इन दोनों में छिपे आपसी रिश्तों की पड़ताल अब अनिवार्य हो चली है। सरकारें चाहे वह केन्द्र की हो या राज्यों की तथा वे किसी भी दल की हों, अंततः व्यवसायियों के हित में ही काम कर रही हैं। आज सारी दुनिया के विशेषज्ञ कह रहे हैं कि यदि दुनिया को भूख और गरीबी से निजात पाना है तो विश्व को अब ग्रामीण अर्थव्यवस्था जिसमें कृषि प्रमुख है, की ओर ज्यादा ध्यान देना ही होगा। भवानी बाबू हमें चेता गए हैं कि :—

उम्र क्या ऐसे ही बीतेगी
राग द्वेषमयी?
कब तक कर्ता रहेगा मुग्ध,
महत्ता मिलेगी उपकरणों को। (सप्रेस)

क्रांति और युद्ध

❑ **धीरेन्द्र मजूमदार**

क्रांति कहते किसे हैं? दुर्भाग्य से हमारे देश में हिंसा और धूमधाम से जो होता है, उसे क्रांति कहते हैं। युद्ध और विद्रोह भी खूब धूमधाम से होता है, जानें जाती हैं, किन्तु वह सब क्रांति नहीं होता। 1942 में अपने देश में जो हुआ उसे अगस्त क्रांति कहते हैं। आजाद, भगत सिंह आदि को क्रांतिकारी कहते हैं, लेकिन क्रांति तो उसे कहते हैं जिसमें मान्यता परिवर्तित होती हैं।

अपने देश में जो आजादी की लड़ाई हुई वह क्रांति नहीं, युद्ध था। यदि सबके मन में गुलामी ठीक है ऐसी मान्यता होती है और उसके बाद संघर्ष के बाद—यदि मान्यता बदल गयी होती तो कहते कि क्रांति हुई। किन्तु गुलामी की मान्यता तो किसी के मन में थी नहीं, आजादी की थी। उसकी प्राप्ति के लिए जो संघर्ष हुआ वह युद्ध था, क्रांति नहीं। जब अधिक फसाद होती है तो कहते हैं हरित हुई। इसी तरह किसी दिन यदि सड़कें अधिक पिचकी हो जायें तो कहेंगे ब्लेक क्रांति हो गयी। क्रांति शब्द का ऐसा दुरुपयोग इसी देश में होता है। अमेरिका में जो आजादी की लड़ाई हुई उसे वहां के लोग—'वार ऑफ इन्डिपेन्डेन्स' कहते हैं—रिवोल्यूशन (क्रांति) नहीं कहते।

अब समग्र क्रांति क्या है? जीवन के सभी क्षेत्रों में मान्यता परिवर्तन—राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक, नैतिक आदि सभी क्षेत्रों में। यह लक्ष्य है। वैसे स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार किसी एक बिन्दु पर क्रांतिकारी अधिक जोर लगा सकता है। मैं 'संपूर्ण क्रांति' शब्द के बदले 'समग्र क्रांति' शब्द अधिक पसंद करता हूं। संपूर्ण तो केवल ईश्वर है और ईश्वर की भी सबकी मान्यता नहीं है। समग्र माने आल राउण्ड, चौमुखी।

आज विश्व मानता है कि सरकार और सैनिक शक्ति द्वारा समाज का संचालन होता है। गांधी ने कहा था समाज व्यवस्था लोकशक्ति द्वारा हो। सात लाख गांवों में सात लाख ग्राम गणराज्य हों। उन्होंने कहा था कि कुछ लोगों के द्वारा सत्ता हथिया लेने को स्वराज्य नहीं कहते किन्तु स्वराज्य तो उसे कहते हैं जब सब लोगों में सत्ता के दुरुपयोग को रोकने की क्षमता हो। यदि ऐसा हो जाता है तो हम मानेंगे कि राजनैतिक क्रांति हो गयी।

आर्थिक क्षेत्र में आज सारे संसार में पूंजीमूलक उत्पादन की मान्यता है। अगर यह मान्यता बदले—श्रममूलक उत्पादन पद्धति की मान्यता बन जाए, तो मानेंगे कि आर्थिक क्रांति हुई। विकेन्द्रीकरण हो किन्तु वह भी पूंजी-आधारित नहीं श्रम-आधारित।

सामाजिक क्रांति क्या है? छुआछूत सब मानते हैं, जाति-पांति सब मानते हैं। आम मान्यता यही है। यह बदल जाए तो सामाजिक क्रांति हुई, ऐसा मानेंगे।

जयप्रकाशजी ने पहले वर्ग निराकरण की बात कही थी। आज वर्ग-संघर्ष की बात कह रहे हैं। यह इसलिए कि यह परिस्थिति की अनिवार्यता है। आज श्रमिक वर्ग पर बौद्धिक वर्ग, बड़े किसान और उच्च जाति के वर्ग अत्याचार बढ़ाते चले जा रहे हैं। एक तरफ यह हो रहा है और दूसरी तरफ उस वर्ग (दलित वर्ग) में चेतना बढ़ रही है। यह परिस्थिति विस्फोट पैदा करेगी। दोनों पक्ष लाठी लेकर निकलेंगे। लेकिन ऊपर वालों की लाठी के सामने इनकी लाठी चल नहीं पायेगी। ये ही अधिक मारे जायेंगे।

हम चुपचाप बैठे-बैठे अहिंसा जपते रहें तो उससे परिस्थिति की यह अनिवार्यता टलने वाली नहीं है। और जब हिंसा फूट पड़ेगी तो हम क्या कर सकेंगे? तब हम शांति नहीं स्थापित कर सकते। लेकिन यदि आज से ही सभी शांति नहीं स्थापित कर सकते। लेकिन यदि आज से ही सभी शांति में विश्वास करने वाले लोग इसमें लगें तो विक्षोभ शांतिमय सत्याग्रह के रूप में मुड़ सकेगा अन्यथा नहीं।

इसलिए युद्ध और विद्रोह में जितनी शहादत की जरूरत है, उसी शहादत के साथ हमें विश्व मान्यता परिवर्तन के काम में लग जाना चाहिए। ❑

46वें अ. भा. सर्वोदय समाज सम्मेलन का निवेदन

1 से 3 नवंबर 2015 को दिल्ली में महात्मा गांधी द्वारा स्थापित हरिजन सेवक संघ में सर्वोदय समाज का 46वां सम्मेलन एक नये उत्साह एवं ऊष्मा के साथ सम्पन्न हुआ। इसमें भारत के अतिरिक्त दुनिया के विभिन्न देशों के करीब 4 हजार प्रतिनिधियों की उपस्थिति गांधी-विचार में उनकी आस्था को दर्शाती है।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आतंकवाद, युद्ध, हिंसा तथा असमानता ने पूरी दुनिया को झकझोर कर रख दिया है। सम्मेलन के प्रतिनिधियों के वक्तव्यों में इसका स्पष्ट दर्शन हुआ। नवसाम्राज्यवाद तथा शोषण की प्रवृत्ति ने दुनिया को विषाक्त तथा द्वेषपूर्ण बना दिया है। महात्मा गांधी ने कहा था कि हम ऐसे विश्व में नहीं रहना चाहते हैं, जहां अशांति और हिंसा हो।

पूरी दुनिया के विचारक इस बात में एकमत हैं कि दुनिया को विनाश से मात्र महात्मा गांधी के सत्य, अहिंसा व करुणा से ही बचाया जा सकता है। यह सम्मेलन यह भी मानता है कि इस गुरुतर उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए सर्वोदय कार्यकर्ताओं का विशेष दायित्व है। सम्मेलन के ग्रामोद्योगों के विकास एवं प्रोत्साहन, सम्पूर्ण नशाबंदी, जल-जंगल-जमीन पर समाज के वंचित समुदायों का अधिकार, महिला सुरक्षा व सम्मान, ग्रामस्वराज्य, कौमी एकता, आर्थिक सामाजिक समानता, पर्यावरण सुरक्षा के लिए अपने संघर्ष को और तेज करने का संकल्प किया।

बापू ने भारत की एकता अखंडता तथा अक्षुण्णता के लिए अपने जीवन का बलिदान किया। उनका पूरा जीवन साम्प्रदायिक सद्भाव की स्थापना तथा विषमता को दूर करने के लिए समर्पित था। आज देश में, नागरिकों के एक बड़े तबके को संवैधानिक अधिकारों से वंचित करने के उद्देश्य से उन पर हमले किये जा रहे हैं। यह सम्मेलन बहुलतावाद के इस आक्रमण को मानवता के खिलाफ आक्रमण मानता है। हम सभी गांधी सेवक इस परिस्थिति से बहुत ही विचलित और क्षुब्ध हैं।

जिन विभाजक शक्तियों ने राष्ट्रपिता गांधीजी की हत्या की थी, वे फिर से अपना सिर उठाने लगी हैं। वे हत्यारे को महिमा-मंडित कर रहे हैं। यह सम्मेलन मानता है कि यह कुप्रयास राष्ट्र के ताने-बाने को छिन्न-भिन्न कर सकता है। समाज में भिन्न राय रखने वालों पर अनेक तरह की पाबंदियां लगायी जा रही हैं। असहमति और भिन्नता को दबाने के लिए नृशंस हत्या तक की जा रही है। इससे महिला, दलित व अल्पसंख्यक सबसे अधिक प्रभावित हो रहे हैं। धर्मनिरपेक्षता, परस्पर आदर, भाईचारे, विश्वास और सहयोग से ही हमारा लोकतंत्र मजबूत होगा। हमें ऐसे वातावरण का निर्माण करना होगा कि धार्मिक, वैचारिक अल्पसंख्यक अपने को असुरक्षित महसूस नहीं करें।

शिक्षा और संस्कृति के केन्द्रों पर वैचारिक हमले तथा नाहक हस्तक्षेप से इसकी प्रतिष्ठा निरंतर गिरायी जा रही है। सर्वोदय समाज इस परिस्थिति के प्रति अपनी चिन्ता और नाराजगी व्यक्त करता है। हम सरकार से निवेदन करते हैं कि इस परिस्थिति के निराकरण के लिए संवाद और सहयोग के वातावरण का निर्माण करें।

तथाकथित विकास के नाम पर नित नए बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए लाल कालीन बिछाए जा रहे हैं। उनके निरंतर हस्तक्षेप के कारण भारत के ग्रामोद्योग एवं कुटीर उद्योग टूट रहे हैं। आज विकास के केन्द्र में मनुष्य नहीं है परिणाम स्वरूप वह विनाश साबित हो रहा है। महात्मा गांधी ने अपने महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'हिन्द स्वराज्य' में इसका स्पष्ट चित्रण किया है। यदि हमें मानवता एवं सृष्टि को बचाना है तो 'हिन्द स्वराज' ने जो हमें जो रास्ता दिखाया है, उस पर चलने के लिए अलावा और कोई विकल्प नहीं है। दूसरे शब्दों में कहें तो 'हिन्द स्वराज' एक नयी सभ्यता का प्रारूप है। आज कई सरकारें कह रही हैं कि गांधी के मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं। हमारा निवेदन है कि यदि वे वास्तव में गांधी के रास्ते का अनुसरण करना चाहती हैं तो अपनी नीतियां हिन्द स्वराज में वर्णित विचारों के अनुरूप बनायें।

यह दुख का विषय है कि आजादी के छह दशकों बाद भी आज भी देश में असामानता, छुआछूत, ऊंचनीच विद्यमान हैं। इस असमानता को दूर करने में हम सब गांधीजन वर्षों से लगे हुए हैं। हम इस असमानता, अन्याय, शोषण, अत्याचार और विश्व की सबसे बड़ी समस्या हिंसा से देश और दुनिया को मुक्त करने का संकल्प करते हैं। अगर दुनिया को बचाना है तो हमें युद्धविहीन विश्व का निर्माण करना ही होगा। अमन और शांति से ही हम प्रगति के पथ पर बढ़ सकते हैं।

सर्वोदय समाज का यह सम्मेलन सभी सामाजिक संगठनों, कार्यकर्ताओं तथा देश की जनता से अपील करता है कि इन खतरों के प्रति सजग रहें एवं एकजुट होकर विभाजनकारी शक्तियों का डटकर मुकाबला करें।

जय जगत का मंत्र ही हमारे कार्यों का वैचारिक संवाहक होगा। ❑

गतिविधियां एवं समाचार

'गांधी-जयंती' सप्ताह का आयोजन

इस वर्ष 'मुम्बई सर्वोदय मंडल' ने 'गांधी जयंती' 2 अक्टूबर से 'जे. पी. जयंती' 11 अक्टूबर तक 'गांधी जयंती सप्ताह' का आयोजन किया। इस दौरान मुख्यतः तीन कार्यक्रम उल्लेखनीय रहे—(1) गांधी कथा-कथन, (2) 'गांधी की प्रासंगिकता' पर व्याख्यान एवं (3) 'राजनीति बनाम लोकनीति' पर गोष्ठी का आयोजन। साथ ही पूर्व वर्षों की भांति पूरे सप्ताह गांधी बुक सेंटर, मुम्बई द्वारा पुस्तकों की बिक्री पर 50 प्रतिशत छूट भी दी गयी और जेलों में गांधी परीक्षा आयोजित की गयी।

गांधी कथा-कथन : गांधीजी के जीवन के प्रेरणादायी प्रसंगों को बच्चों तक ले जाने का काम 'गांधी कथा-कथन' कार्यक्रम के अंतर्गत किया गया। सामान्यतया बच्चे गांधी के राजनैतिक इतिहास को किताबों में पढ़े ही होते हैं, पर राजनीति के साथ ही गांधीजी ने अपना संपूर्ण जीवन एक उच्चतम नैतिक मूल्यों पर जीया, जिसकी जानकारी बच्चों को देना इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य रहा।

बच्चे कहानियां पसंद करते हैं, इसलिए गांधी के जीवन प्रसंगों को उन्हें कहानियों के माध्यम से सुनाया गया। इन प्रसंगों के द्वारा बच्चे गांधी की अहिंसा, सत्य, प्रेम, स्वच्छता, अपरिग्रह, सादगी व समानता जैसे मूल्यों के प्रति निष्ठा से अवगत होते हैं।

पूरे सप्ताह में 8 स्कूलों में 26 कार्यशालाएं आयोजित की गयीं; जिसमें करीब 1040 बच्चों के साथ संवाद किया गया। 6ठी से 9वीं कक्षा के विद्यार्थियों के साथ विशेषतः संवाद कार्यक्रम रखा गया।

गांधी की प्रासंगिकता पर व्याख्यान : 'गांधी जयंती' 2 अक्टूबर के दिन गुजरात विद्यापीठ के पूर्व कुलपति डॉ. सुदर्शन आयंगार ने अपने व्याख्यान में कहा कि आज हम अपनी शक्ति ही खो बैठे हैं, इसका कारण है स्वराज्य मिलने के बाद हम 'हिन्द स्वराज्य' के रास्ते से भटक गये हैं, जिससे आज हम चित्तशुद्धि, रचनात्मक कार्यक्रम व सत्याग्रह की भूमिका में ही नहीं रहे।

पश्चिम की सभ्यता व पूर्व की सभ्यता का तुलनात्मक चर्चा करते हुए डॉ. आयंगार ने बताया कि पश्चिमी सभ्यता यह सिद्ध करना चाहती है कि गांधी की चित्तशुद्धि की, आत्मशोध की प्रक्रिया केवल एक आदर्श है। यह आदर्श कभी भी अमल में नहीं लाया जा सकता। पश्चिम की सभ्यता यह साबित करना चाहती है कि परिवर्तन तंत्रगत है। परिवर्तन में व्यक्ति की भूमिका गौण है। मनुष्य को तंत्र में बांधना होगा। गांधी के प्रयासों को नकारने का, असफल ठहराने का प्रयास विश्व स्तर पर चल रहा है। बौद्धिक युग सिखा रहा है कि सारी समस्या का हल तर्क, टेक्नोलॉजी से हो जायेगा और पूर्व की सभ्यता के सिखाये मूल्यों से हम हटते चले गये।

मनुष्य का प्रकृति के साथ का संबंध सम्मान का था और डर का भी था। जिस समाज ने प्रकृति का सम्मान किया उसकी संस्कृति अलग से पली बढ़ी, जिस समाज के मन में प्रकृति के प्रति डर था, उसका डर चले जाने से वह प्रकृति पर हावी होने लगा। उस समाज ने प्रकृति को अपने वश में करने की दिशा पकड़ी, भोग की दिशा में पश्चिमी संस्कृति बढ़ी।

प्रेम व आत्मबल से ही अहिंसक समाज बनेगा, अहिंसक समाज के निर्माण के लिए रचनात्मक कार्यक्रम हैं। सत्य की खोज यानी कि चित्तशुद्धि! चित्तशुद्धि करते हुए जीवन समाज के कार्य में लगाना चाहिए। रचनात्मक कार्य में अगर व्यवधान उत्पन्न होता है तो सत्याग्रह करना होगा। यह दृष्टि रखने के कारण ही गांधी अन्यों से कई कदम आगे दिखायी देते हैं। गांधीजी की इस प्रभा के कारण ही सारे समाज की नीतिमत्ता ऊंची उठी है।

इस सभा की अध्यक्षता डॉ. विवेक कोरडे तथा संचालन शेख हुसेन ने किया।

जेपी जयंती के उपलक्ष्य में 10 अक्टूबर, 2015 को 'राजनीति बनाम लोकनीति' विषय पर गोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसका विषय प्रवेश श्री रमेश ओझा ने किया। गोष्ठी की अध्यक्षता श्री वीरेन्द्र कुमारजी ने की। गोष्ठी में जयंत दिवाणी, डेनियल माजगांवकर व शेख हुसैन ने भाग लिया।

–टी. के. सोमैया

हरियाणा सर्वोदय मंडल का पुनर्गठन

हरियाणा प्रदेश सर्वोदय मंडल का 13 अक्टूबर, 2015 को एम.एल.एन. कॉलेज, यमुनानगर में हुई बैठक में पुनर्गठन किया गया। नीचे लिखी जिम्मेवारियों का निर्वहन अब निम्न अनुसार की जायेगी :—

संरक्षक : श्री महावीर त्यागी, आश्रम पट्टी-कल्याण, जिला-पानीपत-132102, संपर्क-9416307506।

अध्यक्ष : श्री रामसिंहजी, वार्ड नं. 10, मुकाम व पोस्ट तरावड़ी, जिला-करनाल-132116, मो. 9416657498।

उपाध्यक्ष : श्री जयभगवान शर्मा, ग्राम व पोस्ट - डाहर, जिला - पानीपत-132105, मो. 9050159753।

महामंत्री : श्री सुखपाल सिंह, ग्राम व पोस्ट देहरा, जिला-पानीपत-132122, मो. 9466271581।

मंत्री : श्री सतीश मराठा, 136, दयानन्द कॉम्पलैक्स, जय सिनेमा चौक, गुड़गांव-122001, मो. 9716510295।

नेमिचन्द्र जैन 'भावुक' की स्मृति में व्याख्यान-माला

देश में नव-आर्थिक नीतियों के कारण विषमता तेजी से बढ़ रही है, देश में बढ़ते शहरीकरण से विषमता की रफ्तार में तेजी आयी है। जब तक देश में आर्थिक गैर-बराबरी दूर नहीं होगी तब तक देश का सर्वांगीण विकास संभव नहीं है। यह विचार नेमिचन्द्र जैन 'भावुक' की पांचवीं पुण्यतिथि 21 अक्टूबर, 2015 के अवसर पर गांधी

शांति प्रतिष्ठान, जोधपुर द्वारा आयोजित गांधी भवन के सभागार में आयोजित व्याख्यान-माला में सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष महादेव विद्रोही ने बतौर मुख्य वक्ता व्यक्त किये।

श्री विद्रोही ने आगे कहा कि आज ग्रामीणों से रोजगार छिनते जा रहे हैं, देश के नागरिक महंगाई व विषमता का बोझ सहने के लिए विवश हैं। आर्थिक समता का लक्ष्य हासिल करने पर ही शांतिप्रिय व अहिंसक समाज का स्वप्न साकार हो सकता है। आपने विभिन्न तथ्य व आंकड़े प्रस्तुत कर बढ़ती विषमता पर चिन्ता प्रकट की एवं गांधी के ट्रस्टीशिप के सिद्धांत को व्यवहारिक जीवन में उतारने पर बल दिया।

कार्यक्रम की अध्यक्षता करती हुईं प्रतिष्ठान की उपाध्यक्ष आशा बहन बोथरा ने कहा कि आय में असमानता की खाई चौड़ी हो गयी है। गांधी-दर्शन गरीबी ही नहीं, अमीरी को भी मिटाने की बात करता है। आज की आर्थिक नीतियां नयी गुलामी लेकर आयीं हैं, इस गुलामी से मुक्त होने के लिए गांधी-दर्शन ही एकमात्र रास्ता है।

कार्यक्रम में पूर्व मुख्यमंत्री (राजस्थान) श्री अशोक गहलोत ने कहा कि बचपन में मिले संस्कार ही जीवन की पूंजी बनते हैं। भावुक साहब ने हमें बचपन से ही रचनात्मक कार्यक्रमों से जोड़ा, जिसका प्रभाव हम पर आज भी कायम है। इस अवसर पर मुरलीधर वैष्णव ने कहा कि व्यक्ति की गुणवत्ता के अनुसार आय की भिन्नता को गांधी ने भी स्वीकार किया था। लेकिन उनका कहना था कि ट्रस्टीशिप के सिद्धांत के अनुसार उस आय का कुछ हिस्सा गरीबों एवं जीव-जंतुओं में भी बांटा जाय। इसके लिए जरूरी है कि हम अपनी जीवन पद्धति को भी बदलें। प्रारम्भ में आचार्य मोहनकृष्ण बोहरा ने अतिथियों का स्वागत किया और कहा कि भावुकजी ने संघर्ष से व्यक्तित्व का निखार कर समर्पित जीवन से संस्था का निर्माण किया। डॉ. पद्मजा शर्मा ने कहा कि भावुक साहब ने गांधी के विचारों के प्रचार-प्रसार के लिए अपना जीवन लगा दिया।

इस अवसर पर राजेन्द्र सिंह गहलोत ने गांधीभवन के 15 वर्षों के कार्यक्रमों एवं समाचार-पत्रों की कटिंग्स के संग्रहित 5 एलबम गांधी भवन को भेंट किये। कार्यक्रम में ग्रामीण कार्यकर्ता ताराचंद डांगी ने 'मारा जूना जोशी, राम मिलन कद होसी' भजन प्रस्तुत किया। कार्यक्रम में त्रिलोकचंद गुलेच्छा, प्रो. सुशीला बोहरा, शशिबहन त्यागी, शीन काफ निजाम, हबीब कैफी, डॉ. एन. के. माहेश्वरी, प्रो. अजीतमल जैन, डॉ. ओ. पी. टाक, डॉ. धनराज जैन, डॉ. जी. जी. बाहेती, सुमंगला, संध्या जैन, सविता मेहता, गौतम खंडप्पा, मनोहर सिंह चौहान सहित प्रबुद्ध जन एवं युवा सहभाग किये।

कार्यक्रम का संचालन डॉ. भावेन्द्रशरद जैन ने किया। –डॉ. भावेन्द्र शरद जैन

कविता

हर बार हो मेरा जीवन तेरे जीवन से

❑ दुर्गेश नन्दन त्रिपाठी

जीवन की इस तपती धूप में
मां इक शीतल छांव हो तुम
थक कर जब भी मैं घर लौटा
ऊर्जा का संचार हो तुम

रक्त पिलाया तुमने अपना
जब मैं अँधियारों में था
नींद उड़ायी तुमने अपनी
जब शैशव स्वप्न बहारों में था

दूध पिलाकर तुमने अपना
स्वस्थ किया तुमने मेरा तन
अपने सुख-दुःख को तज करके
गढ़ा है तुमने मेरा जीवन

हुआ बड़ा मैं
निकल पड़ा अपने सफर पे
लालच का इक दरिया है
मैं दरिया की इस डगर पे

लौटूंगा कब
मुझको इसका नहीं पता है
लौटूंगा या नहीं
प्रश्न यह भी खड़ा है!

दिन ढलेगा धीरे-धीरे
शाम आयेगी
तुमको अपने रक्त की जरूरत
याद आयेगी

लेकिन उस जरूरत को
क्या समझ सकूंगा
या फिर उस दरिया में
मैं डूब पडूंगा

गर डूब गया तो
तेरा अपराधी हूं मां
जो कठिन दंड हो
उसका बड़ भागी हूं मां

लेकिन दुनिया की कुछ
ऐसी भी बातें हैं
कुछ ऐसे बच्चे हैं जिनकी
बिन मां की राते हैं

भूख, बीमारी, व्यथा, शोषण से
त्रस्त जीवन में
जिन्दगी दम तोड़ती है
उनकी बचपन में

तेरे रक्त, दूध की जो
शक्ति मुझमें है मां
उस शक्ति से इनका
कुछ भला कर सकूं

तेरी सेवा ना करने का
जो पाप चढ़ा है
उस पाप का थोड़ा-सा
प्रायश्चित कर सकूं

हो लक्ष्य अडिग जिस पर
मैं आगे बढ़ सकूं
तेरी रक्त शक्ति का
थोड़ा-सा उपयोग कर सकूं

हर बार हो मेरा जीवन
तेरे जीवन से
हर बार मैं उसको
इन गरीबों पर तज सकूं

भारत स्वतंत्र होगा तो यहां पंचायत-राज होगा

❑ **महात्मा गांधी**

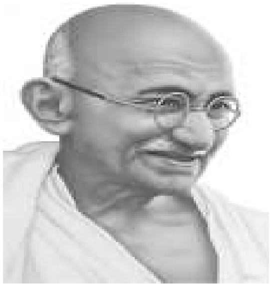

पंचायत हमारा बड़ा पुराना और सुंदर शब्द है, उसके साथ प्राचीनता की मिठास जुड़ी हुई है। उसका शाब्दिक अर्थ है गांव के लोगों द्वारा चुने हुए पांच आदमियों की सभा। यह उस पद्धति का सूचक है, जिसके द्वारा भारत के बेशुमार ग्राम-लोकराज्यों का शासन चलता था। लेकिन ब्रिटिश सरकार ने महसूल वसूल करने के अपने कठोर तरीके से इन प्राचीन लोक-राज्यों का लगभग नाश ही कर डाला। (यंग इंडिया, 28-5-'31)

आजादी का अर्थ हिन्दुस्तान के आम लोगों की आजादी होना चाहिए, उन पर हुकूमत करने वालों की आजादी नहीं। हाकिम आज जिन्हें अपने पांव तले रौंद रहे हैं, आज हिन्दुस्तान में उन्हीं लोगों की मेहरबानी पर हाकिमों को रहना होगा। उनको लोगों के सेवक बनना होगा और उनकी मर्जी के मुताबिक काम करना होगा।

आजादी नीचे से शुरू होनी चाहिए। हरएक गांव में जमहूरी सल्तनत या पंचायत का राज होगा। उसके पास पूरी सत्ता और ताकत होगी। इसका मतलब यह है कि हरएक गांव को अपने पांव पर खड़ा होगा— अपनी जरूरतें खुद पूरी कर लेनी होंगी, ताकि वह अपना सारा कारोबार खुद चला सके। यहां तक कि वह सारी दुनिया के खिलाफ अपनी हिफाजत खुद कर सके। उसे तालीम देकर इस हद तक तैयार करना होगा कि वह बाहरी हमले के मुकाबले में अपनी रक्षा करते हुए मर-मिटने के लायक बन जाय। इस तरह आखिर हमारी बुनियाद व्यक्ति पर होगी। इसका यह मतलब नहीं कि पड़ोसियों पर या दुनिया पर भरोसा न रखा जाए या उनकी राजी-खुशी से दी हुई मदद न ली जाए। खयाल यह है कि सब आजाद होंगे और सब एक-दूसरे पर अपना असर डाल सकेंगे। जिस समाज का हरएक आदमी यह जानता है कि उसे क्या चाहिए और इससे भी बढ़कर जिसमें यह माना जाता है कि बराबरी की मेहनत करके भी दूसरों की जो चीज नहीं मिलती है, वह खुद भी किसी को नहीं लेनी चाहिए, वह समाज जरूर ही बहुत ऊंचे दर्जे की सभ्यता वाला होना चाहिए।

ऐसे समाज की रचना स्वभावतः सत्य और अहिंसा पर ही हो सकती है। मेरी राय है कि जब तक ईश्वर पर जीता-जागता विश्वास न हो, सत्य और अहिंसा पर चलना नामुमकिन है। ईश्वर या खुदा व जिन्दा ताकत है, जिसमें दुनिया की तमाम ताकतें समा जाती हैं। वह किसी का सहारा नहीं लेती और दुनिया की दूसरी सब ताकतों के खतम हो जाने पर भी कायम रहती है। इस जीती-जागती रोशनी पर, जिसने अपने दामन में सब कुछ लपेट रखा है, मैं विश्वास न रखूं, तो मैं समझ न सकूंगा कि मैं आज किस तरह जिन्दा हूं।

ऐसा समाज अनगिनत गांवों का बना होगा। *उसका फैलाव एक के ऊपर एक के ढंग पर नहीं, बल्कि लहरों की तरह एक के बाद एक की शकल में होगा। जिन्दगी मीनार की शकल में नहीं होगी, जहां ऊपर की तंग चोटी को नीचे के चौड़े पाये पर खड़ा होना पड़ता है। वहां तो समुद्र की लहरों की तरह जिन्दगी एक के बाद एक घेरे की शकल में होगी और व्यक्ति उसका मध्यबिन्दु होगा।* यह व्यक्ति हमेशा अपने गांव के खातिर मिटने को तैयार रहेगा। गांव अपने इर्द-गिर्द के गांवों के लिए मिटने को तैयार होगा। इस तरह आखिर सारा समाज ऐसे लोगों का बन जायेगा, जो उद्धत बनकर कभी किसी पर हमला नहीं करते, बल्कि हमेशा नम्र रहते हैं, और अपने में समुद्र की उस शान को महसूस करते हैं, जिसके वे एक जरूरी अंग हैं।

इसलिए सबसे बाहर का घेरा या दायरा अपनी ताकत का इस्तेमाल भीतर वालों को कुचलने में नहीं करेगा, बल्कि उन सबको ताकत देगा और उनसे ताकत पायेगा। मुझे ताना दिया जा सकता है कि यह सब तो खयाली तस्वीर है, इसके बारे में सोचकर वक्त क्यों बिगाड़ा जाए? युक्लिड की परिभाषा वाला बिन्दु कोई इनसान खींच नहीं सकता, फिर भी उसकी कीमत हमेशा रही है और रहेगी। इसी तरह मेरी इस तस्वीर की भी कीमत है। इसके लिए इनसान जिन्दा रह सकता है। अगरचे इस तस्वीर को पूरी तरह बनाना या पाना मुमकिन नहीं है, तो भी इस सही तस्वीर को पाना या इस तक पहुंचना हिन्दुस्तान की जिन्दगी का मकसद होना चाहिए। जिस चीज को हम चाहते हैं, उसकी सही-सही तस्वीर हमारे सामने होनी चाहिए। तभी हम उससे मिलती-जुलती कोई चीज पाने की उम्मीद रख सकते हैं। अगर हिन्दुस्तान के हरएक गांव में कभी पंचायती राज कायम हुआ, तो मैं अपनी इस तस्वीर की सच्चाई साबित कर सकूंगा, जिसमें सबसे पहला और सबसे आखिरी दोनों बराबर होंगे या यों कहिये कि न कोई पहला होगा, न आखिरी।

इस तस्वीर में हरएक धर्म की अपनी पूरी और बराबरी की जगह होगी। हम सब एक ही आलीशान पेड़ के पत्ते हैं। इस पेड़ की जड़ हिलायी नहीं जा सकती, क्योंकि वह पाताल तक पहुंची हुई है। जबरदस्त से जबरदस्त आंधी भी उसे हिला नहीं सकती।

इस तस्वीर में उन मशीनों के लिए कोई जगह न होगी, जो इनसान की मेहनत की जगह लेकर चंद लोगों के हाथों में सारी ताकत इकट्ठा कर देती है। सुधरे हुए लोगों की दुनिया में मेहनत की अपनी अनोखी जगह है। उसमें ऐसी मशीनों की गुंजाइश होगी, जो हर आदमी को उसके काम में मदद पहुंचाएं। ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा
सुरभि प्रिन्टर्स, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार। छपी प्रतियाँ : 1500